बन्दी

प्रथम संस्करण २००२ वि०

प्रकाशक

अ० भा० राष्ट्रीय साहित्य

प्रकाशन परिषद्
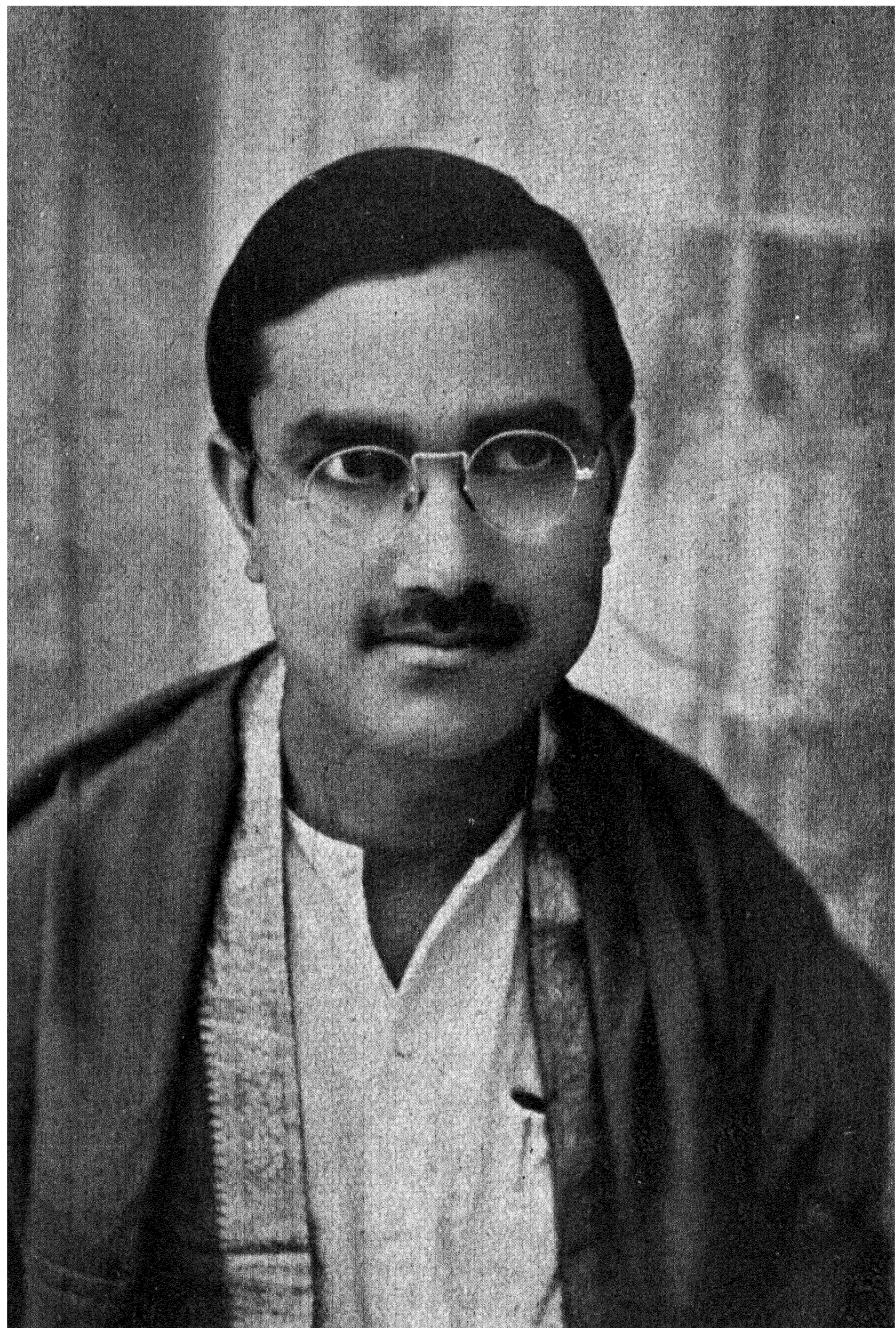
मेरठ

मूल्य तीन रुपए

मुद्रक

मदनमोहन बी० ए०

निष्काम प्रेस, मेरठ ।

''मित्र''

अनुभूति

कारागृह के किसी कोने में कवि कम्बल कुरेद रहा था। काव्य-कानन की कटीली डालियों पर कुसुम केलि कर रहे थे। पुरुष और प्रकृति के इन्द्रजाल में दैव की लीला नाच रही थी।

कल्पना-कामिनी का पञ्चम स्वर लहराया, लहरों में क्रीड़ा खेली, व्रीड़ा ने घूँघट खींचा, स्नेह की बाँसुरी बजी, बेड़ियाँ झनझनाईं, एवं *"चौंतीस कैदी, ताला कुञ्जी, लालटेन सब ठीक हैं साहब!"* की मधुर मातमी तान छिड़ी।

बन्धन और स्वतन्त्रता, जीवात्मा और परमात्मा, सत्य और असत्य, नियोग और योग, मृगाक्षी और मृड़ानी, कौतुक और कौतूहल, ऋजु और प्रतीप, व्यष्टि और समष्टि, स्नेह और जलन, वैराग्य और वासना, आशा और निराशा, प्रणय और प्रेरणा, एवं श्रद्धा और शान्ति की समस्यायें साकार स्वरूप धारण कर संघर्ष करने लगीं।

विधि की इन विलक्षण विडम्बनाओं में भूले से कवि ने मञ्च पर दृष्टि डाली, कराल कलियुग की कालिमा लगाये साक्षात् कालिका सी क्रूर काल-रात्रि की विभ्राट् विभीषिका दिखाई दी, ताण्डव नृत्य शुरु हुआ, भैरवी सङ्गीत छिड़ा, तसले की तीखी तान के साथ स्वरलहरी लहराई, अदृश्य शक्ति की प्रदर्शिनी में क्रान्ति हुई, अङ्गारे धधके, आँसुओं की झड़ी लगी, चामुण्डा संगीत के साथ "एक दो तीन चार....." एव "बन्दियां !" के जागरण गीत शुरु हुए। मृतसंजीवनी— निद्रादेवी को लहासो से बाँध दिया, वह वृश्चिकाली बन कर काटने लगी, सर्पिणी बन कर फुंकारी, हवा के थपेड़ों से थरथरी चढ़ गई, शृङ्खलाओं में स्पन्दन हुआ, कड़खैत गूंजा, कल्पना के पंख हिले।

कारा कुलटा के साथ ही निःशंक सम्राज्ञी निशि-नर्तकी का निदारुण नाटक शुरु हुआ, फाँसी के तख्ते, हत्याकाण्ड, श्मशान, चिताएं, आँसू, सिसकते अरमान, किसी की प्रतीक्षा, किसी के बन्धन, किसी का प्यार, किसी के दुतकारे, नियति निरंजन द्वैत अद्वैत आदि न जाने कितने पात्रों का प्रवेश हुआ, इधर प्रतारणा की वीभत्स शृङ्खलायें, उधर प्रेम के बन्धन, स्मृति की तलवार, हृदय पर स्नेह के अमर फूलों की अर्गला, एवं चाँद सा चित्र, दोनों तरफ़ से निर्मल आलिंगन के लिये बढ़ी हुई बाहें और बीच ही में दुनिया

की दीवारों से टक्करें खा खा कर प्राणान्त, फिर रुदन तथा दाहसंस्कार, हाय !

हृदय से यथार्थवादी पथिकों की प्रेरणा हुई, कवि उसमें घूमने लगा, कल्पना कामिनी भी साथ थी, क्षण भर के लिये उसकी ओर से दृष्टि हटी और कालकोठरी के वातायन पर जाकर रुक गई, जहाँ पूर्व– परिचित पिशाच की डरावनी आकृति क्रूर दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी, उसने समझा कि आज जीवन का अन्त है। राक्षस की रक्तपिपासी तलवार आज उसका रक्त पीने को मुँह फाड़े खड़ी है।

लहू लुहान घटनायें आँखों के आगे अभिनय करने लगीं ; आलोक विलोप हो गया, अनन्त अनय अन्धकार में अतीत और अर्वाचीन अत्याचारों के अभिनय आरम्भ हुए, यवनिका उठते ही रक्तरंजित फाँसी के तख्तों पर शहीदों की परिक्रमा दिखाई दी, और फिर कारागृह में निर्दोषियों पर खूनी तलवारों का नाच, पाशविक प्रवृत्ति का प्रदर्शन ··· और त्राहि, त्राहि !

इस प्रकार रक्त रंजित इतिहास मूर्त्तिमान् हो रङ्गमंच पर आया, बन्दी ये डरावने दृश्य देख कर चीख़ने ही वाला था कि न जाने कौनसी प्रेरणा सामने आकर खड़ी हो गई

और ओजस्वी वाणी में कहने लगी, 'घबराओ नहीं, पाशविक बल आत्मिक बल का बाल भी बाँका नहीं कर सकता'।

शक्ति से उत्साह पा बन्दी अड़गड़े पर आया, जमादार अड़गड़े के सहारे ऊँघ रहा था; यद्यपि लम्बा ओवरकोट और मुँडासा आदि पाले की ठिर से उसकी रक्षा कर रहे थे तथापि पेट का कुत्ता बराबर भौंक रहा था, डण्डा सींकचों के सहारे खड़ा था, बन्दी ने उसे उठा लिया, घूमकर शक्ति की ओर देखा, पर न जाने वह कहाँ लोप हो गई, अपने दूले पर बिछा कम्बल टटोला किन्तु वहाँ भी उसकी तुलसीकृत रामायण तथा तसले के अतिरिक्त और कुछ न था, ऊपर की ओर देखा साक्षात् मृत्यु सी अँधियारी मुँह फाड़े खड़ी थी, किन्तु कवि निडर था, उसके कानों में शक्ति के वे शब्द गूंज रहे थे कि पाशविक बल आत्मिक बल का बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

बन्दी फिर अड़गड़े पर आया, झाँक कर जँगले के बाहर की ओर देखा, अन्धकार का आधिपत्य था, तीस चालीस गज़ की दूरी पर एक लालटेन जल रही थी, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों श्मशान में कोई चिता जल रही हो।

चौकीदार अभी तक ऊँघ रहा था, इतने में चार पाँच वार्डरों के साथ जेलर आता दिखाई दिया, बन्दी ने एकदम

डण्डा जमादार के पास रख दिया पर इस ढंग से जिससे चौकीदार के हाथ में हलकी सी चोट लग गई, जमादार सचेत हो गया, सामने से काराधिकारियों को आता देख सतर्कता से पहरा देने लगा।

जब जेलर आँखों से ओझल हो गया तब बन्दी ने धीरे से कहा, 'चौकीदार!' चौकीदार ने घूमकर जँगले की ओर देखा और मीठे स्वर में बोला, 'कौन कवि जी! आप अभी तक सोये नहीं; दो बजेंगे।' बन्दी ने उत्तर दिया 'नींद नहीं आई जमादार! तुमसे बातें करने चला आया, यहाँ देखा कि तुम दीवार के सहारे खुली हवा में ऊँघ रहे हो, तुम्हारी ऐसी दशा देख मन रो उठा, सोच रहा हूँ कि पेट के पीछे कैसी हवा में पहरा देता है बिचारा, लेकिन फिर भी पेट नहीं भरता, भरे भी कैसे, दो सेर का अनाज बिक रहा है, उसके लिये भी न जाने कितने धक्के खाने पड़ते हैं, और फिर नौकरी ही कितनी मिलती है, क्या इतने वेतन में बालबच्चों का पेट पाल लेते हो, चौकीदार!'

बिचारा क्षण भर के लिये अपना दुःख भूल गया था, बन्दी ने फिर उसे शोक-सागर में डुबा दिया, रुँधे कण्ठ से कहने लगा 'हमहु जानत हैं कवि जी! जैसे कुनबे का काम चलता है, दो बिटिया हैं, एक की उम्र पन्द्रह वर्ष की है, एक बारह वर्ष की हो गई, एक लाली की माँ है,

और एक अभागा आपके सामने खड़ा ही है, एक समय रोटी मिलती है कवि जी ! बच्चों को कभी दूध के दर्शन तक नहीं होते, कुछ तिकड़म की आय जेल से हो जाती है जिससे कपड़े लत्ते का काम चल जाता है, लाली विवाह के योग्य है, पैसा पास नहीं, पता नहीं कैसा समय आ गया, हमारे बड़ों ने इसी वेतन में हमारे विवाह किये, हवेली बना लीं, अच्छा खाते थे, अच्छा पहिनते थे; और अब हम उनका जोड़ा जकोड़ा भी सब खा गये, नौकरी भी खा जाते हैं, फिर भी भूखे ही रहते हैं। कभी कभी तो बच्चों को भूखा रोते देख जी में आता है फाँसी खाकर मर जायें। फिर सोचता हूँ बड़े बूढ़ों का नाम डूब जायेगा, बच्चे भूखें मर जायेंगे। वह भी समय था कवि जी ! जब हमारे घर में दो दो गाय थीं, और अब यह भी समय है कि बच्चों को एक बूँद दूध के भी दर्शन नहीं होते, आज ही की बात है कवि जी ! लाली कहने लगी 'चचा ! एक पैसा दे दो', पर चचा की जेब में तीन दिन से एक भी पैसा नहीं था, ऊपर की आय इधर बिल्कुल नहीं हुई, तुम्हारी शपथ कवि जी ! बिटिया ने पूरे दो मास में पैसा माँगा था। आटा बनिये की दुकान से उधार आ जाता है नहीं तो चारों प्राणी भूखे ही मर जाते।

न जाने दग्ध हृदय और कितनी करुण कहानी सुनाये जाता, पर उसकी आँखों से बहे आँसुओं ने बिचारे की वाणी पर ताले डाल दिये, कहानी कहते कहते जँगले पर सर रख

रोने लगा। कवि ने उसे सान्त्वना दी और आँसू पूँछते हुए टीस भरे शब्दों में बोला, 'रोते क्यों हो चौकीदार! केवल तुम ही नहीं, आज सारा भारत इसी तरह रोता है, इन आँसुओं को पूँछने के लिये दासता की ज़ञ्जीरें तोड़नी होंगी। दारिद्रय दीनता की दारुयोषित बने देश को स्वतन्त्र करने के लिये इतिहास के पृष्ठों पर शहीदों के चित्र ही चित्र चमकाने होंगे। दुर्भिक्ष की होली जलाने के लिये बलिवेदी पर लहू की नदियाँ बहानी पड़ती हैं। स्वतन्त्रता सम्राज्ञी से दारपरिग्रह करने के लिये दारुण दानवता को परास्त करना होगा ......। इतने में चौकीदार ने चौंक कर आकाश की ओर देखा और घबराकर कहा 'कैसे काले बादल हैं, देखते हो कवि जी!' कवि ने ध्यान से उस ओर देखा; काली काली घटायें नभ में नाच रही थीं. ऐसा प्रतीत होता था मानों महाप्रलय की वर्षा होने वाली है, देखते ही देखते समस्त संसार काली छत्री से आच्छादित हो गया, कवि ने घबराकर चौकीदार से कहा, 'ताला खोल कर अन्दर आ जाओ, तूफान आरहे हैं।' चौकीदार ने प्रत्युत्तर में कहा 'नहीं कवि जी! हम नौकरी ही आँधी पानी और हवा में पहरा देने की पाते हैं।' वार्डर के मुँह से पूरी बात भी न निकली थी कि वर्षा होने लगी। कवि ने फिर घबरा कर कहा, 'अन्दर क्यों नहीं आ जाते चौकीदार! देखते नहीं महानाश की वर्षा हो रही है, यदि ऐसी वर्षा में बाहर रहे तो प्रातःकाल से पहिले ही मर जाओगे, नौकर को उसका शुभचिन्तक होना चाहिये जो नौकर का हितैषी हो।'

बहुत कहा लेकिन जमादार अन्दर नहीं आया, दीवार से चिपककर टीन के नीचे बैठ गया। कवि के पास दो कम्बल थे, एक बिछाया और दूसरा ओढ़ कर बैठ गया। पर बैठे हुए दो क्षण भी न हुए थे कि वर्षा की बूँदें खपरैलें फोड़ती हुई सरों पर पड़ने लगीं। खड़ा हो गया, और कम्बल उठा कर बैठने के लिये अन्य स्थान ढूंढने लगा, परन्तु कहीं भी ऐसा स्थान न था जहाँ खड़ा रह कर भीगने से बच सके; दो क्षण बाद ही सारी कोठरी में पानी भर गया, कवि ने अपनी तुलसीकृत रामायण उठा कर छाती से लगा ली; और लँगोटी से बाँध कम्बल ओढ़ भीगता हुआ वर्षा का कोप देखने लगा। कभी दर्वीकर दानवी सी दामिनी दमक कर दात्यूह दल दल भूतल पर आग सी बरसा जाती थी, कभी गगन मण्डल अपना धनुष सँभाल लाल लाल लोचनों से संसार को घूरने लगता, कभी अन्धकार से अन्धकार का युद्ध छिड़ जाता; सहसा क्रुद्ध गगन ने गर्ज कर पानी के स्थान पर पत्थर बरसाने प्रारम्भ कर दिये। अभी तक सरों पर बूँदें पड़ रहीं थीं अब ओले पड़ने लगे; कवि ने अपना तसला अपने सर पर रख लिया, चौकीदार ने अपना ओवर कोट; तथा भींत के सहारे चिपक कर खड़े हो गये; हाथ पैर सुन्न हो रहे थे; कानों में पत्थरों के पड़ पड़ पड़ने के नाद के अतिरिक्त कभी कभी किसी चौकीदार की आवाज़ सुनाई दे जाती थी जो काँपते हुए स्वर में गा गाकर

कहता जाता था "चौंतीस बन्दी, ताला कुञ्जी, लालटेन सब ठीक हैं साहब!"

बाहर की ओर झाँक कर देखा मेदिनी पर श्वेत चादर बिछी हुई थी, जो क्षण क्षण में पीन होती जा रही थी, जिस पर बिजली की चमक पड़ती देख ऐसा जान पड़ता था जैसे समस्त पृथ्वी पर आग जल रही है। बन्दी को निश्चय हो गया कि यदि दो घण्टे इसी प्रकार ओले पड़ते रहे तो समस्त सृष्टि पत्थरों से पिस कर जलमग्न हो जायेगी, थोड़ी ही देर के भीषण जल संघात में कहीं भी स्थल नहीं दिखाई देता, देखते ही देखते स्तर पर स्तर जमते हुए ओले जँगले तक आ पहुँचे जिसकी उँचाई पृथ्वी से लगभग आध गज़ थी। अब ऐसा प्रतीत होने लगा मानों पिँजरे में खड़े हुए हिम-उदधि देख रहे हैं, चौकीदार ने कम्पित स्वर में कवि से कहा— 'कवि जी! मेरी पचास वर्ष की अवस्था है, पर आज तक कभी ऐसे ओले पड़ते नहीं देखे; खेती बिल्कुल नष्ट हो जायेगी, अभी ही अन्न के दर्शन नहीं होते, पता नहीं कैसा आपत्ति काल आने वाला है।'

चौकीदार के मुँह से ये शब्द निकले ही थे कि आकाश का आवेश शान्त हो गया, धीरे धीरे ओलों का गिरना बन्द होने लगा; देखते ही देखते काले पीले बादल भी इधर उधर भागने लगे, मानो रौद्र-रस के विभाव, अनुभाव

और संचारी भाव निहत्थों के आँसुओं में डूबकर शान्ति याचना के लिये प्रायश्चित्त करते हों। पृथ्वी पर जमा हुआ हिम भी प्लावित होकर तेज़ी से बहने लगा, जिसे देख ऐसा जान पड़ता था जैसे हमारी दशा देख पाषाण पिंघल रहा है। थोड़ी ही देर बाद कहीं कहीं पृथ्वी दिखाई देने लगी, एवं सूर्यदेव बादलों को चीरते हुए पूर्व दिशा से आकर बन्दी पर अपनी रश्मियाँ चमकाने लगे।

जमादार अपने घर चला गया; कवि ने अपने कपड़े सुखाये और नित्य कर्म से निवृत्त हो रामायण का पाठ किया; किन्तु कवि के चित्त की स्थिति परिस्थितियों में थी, अतः कवि काव्य-कानन में भ्रमण कर भावनाओं की अर्थियाँ बनाया करता; और फिर जला देता मन मरघट में उनकी चितायें। कागज़ और क़लम के बिना बिचारियों को कौन से सिंहासन पर आसीन करता? लाचार होकर भूखी भावनाओं का दाह संस्कार कर देता; यदि उसके पास तुलसीकृत रामायण न होती तो न जाने माया, मोह और अहंकार उसे आन्तरिक ज्वाला में जलाते या छोड़ते। क्योंकि स्मृति की दुधारी तलवार उसके सर पर थी .... ।

रात्रि में फिर वही चौकीदार आया; अब उससे ऐसा स्नेह हो गया था कि कवि उससे रोज़ बातें करता। जब कवि को निश्चय हो गया कि चौकीदार कवि से उतना ही

स्नेह करता है जितना वह उससे, तब कवि ने बातों बातों में एक दिन चौकीदार से कहा, कि कल मेरे बताये पते पर जाकर एक कापी क़लम एवं दवात ला सकते हो? पहिले तो चौकीदार डरा क्योंकि कितने ही जमादारों को तिकड़म के मामले में दण्ड मिल चुका था, पर कवि के बार बार साहस दिलाने पर वह तैयार हो गया, और दूसरे दिन उसके बताये पते पर जा कापी क़लम एवं दवात इत्यादि ले आया। रात्रि में जब नौकरी पर आया तो दवात क़लम तथा कागज़ सर पर रख ऊपर से रुपट्टा बाँध लिया। जेल के फाटक पर तलाशी हुई, पर सर पर किसी की दृष्टि न पहुँची। इस प्रकार कवि के पास कागज़ क़लम दवात आदि पहुँच गये।

बिचारे चौकीदार ने एक छोटे से दीपक का भी प्रबन्ध कर दिया था, अतः कवि रात दिन काव्य कला में तल्लीन रह गुनगुनाया करता, परमात्मा और प्रकृति के चिरन्तन चित्र चित्रणार्थ तूलिका रंग बिरंगे रंगों में भीगने लगी, लेखनी ने हृदय के चित्र कागज़ों पर अङ्कित किये, जगदम्बा सरस्वती ने जीवन फूका, एवं बन्दी ने बन्धन झनझना कर भावनायें भरीं, प्रेम की उपासना ने 'सत्य शिवं, सुन्दरम्' से उसे सजाया।

कोई कहता है कवि सत्यं शिवं सुन्दरम् का प्रतीक है, कोई कहता है कवि की परिभाषा अनन्त की गणना से भी

आगे है, यदि पश्चिमी सौन्दर्योपासक को कवि कहते हैं तो फ़ारसी तत्त्वज्ञ नामुराद आशिक को, किन्तु मैं तो यही समझ पाया हूँ कि कवि स्वयम् खोया सा रहता है; वह स्वयम् अपने को नहीं समझ पाता, और नाहीं दुनिया उसे परिभाषा में बाँध सकती है, यह दुर्ज्ञेय दैव की दिग्दाह नीति या कला ही जाने कि वह क्या है ?

प्रेम के प्रकाश से मैं जो कुछ समझ सका हूँ वह तो यही कि कवि का हृदय सत्यानुभूतियों का अक्षय भण्डार है, वेदना का मौन उपासक है। विरह का साकार स्वरूप है। व्यथा की निर्विकार प्रतिमा है। जड़ और चेतन का प्रतिबिम्ब है, प्रगति का प्रकाशित पथ है, स्नेह का भूखा भिक्षुक है, सुप्त भावनाओं का जागरूक जागरण है, अवहेलना का आदरणीय आदर है, श्रद्धा का श्रृंगार है, अत्याचार का नाश और मंगल का आह्वान है।

लेकिन यह दीपमालिका कवि की भस्मी पर क्यों मनाई जाती है ? यह कल्पवृक्ष कवि की लाश पर ही क्यों फलता है ? टूटे हुए हृदय की ध्वनि जग का खिलौना क्यों बन जाती है ? मैं तो यही समझ पाया हूँ कि भावुकता से पिघल कर निकला हुआ हृदय ही कविता है, विदीर्ण हृदय ही वह स्थान है जहाँ आदर्श कलामय की कृतियों का स्पन्दन होता है, जहाँ प्रकृति और प्राणी का प्रत्येक स्वर गुञ्जारता

है, जहाँ न्याय का खुला अधिवेशन है, जहाँ अतीत अर्वाचीन का शृंगार स्वरूप है, जहाँ समस्याओं का हल स्पष्ट है, जहाँ हर हृदय का प्रतिबिम्ब झाँकता है; संक्षेप में जहाँ जो कुछ है वह है, यह सब कुछ होते हुए भी कवि का जीवन शुष्क क्यों ? न जाने विधि की यह कैसी विडम्बना है ?

मैं जो कुछ भी लिखता हूँ लिखने के लिये नहीं लिखता, प्रशंसा के लिये नहीं लिखता, कवि कहलाने के लिये नहीं लिखता, अपितु अपने हृदय के चित्र खींचता हूँ, उन्हें संसार जो कुछ भी समझे, लेकिन मैं यह कह सकता हूँ कि भावुक-हृदय के अतिरिक्त मेरे हृदय को कोई भी नहीं समझ सकेगा। मेरे चित्र यथार्थ हैं, सजीव हैं; कला मेरी तूलिका है, हृदय के रँगों से वे रँगे जाते हैं, वेदना उनकी आत्मा है, भावुकता स्वर लहरी, निराशा परिधान, अनुभूति लाक्षणिकता, एवं सजीवता अभिव्यक्ति है। आँसुओं ने उनका शृंगार किया, कोई देवी उनमें बोली, पथराई आँखों ने उन्हें एक टक देखा, भ्रम की भट्टी बुझी, भक्ति से भगवान मिले, प्रेम की उपासना सफल हुई।

यद्यपि अल्पावस्था से ही कवि उलटी सीधी तुकबन्दी करता था, उसे पता नहीं कब उसके मानस में कविता का बीजारोपण हुआ, परन्तु एक मित्र के उपालम्भ ने उसके हृदय में जमी हुई कविता की जड़ों में अमृत रस डाल दिया;

अहंकारी का अहंकार कवि के सूखे मानस में सुधा बनकर बरस पड़ा, कवि उस ताने को याद कर रात भर रोया, और निश्चय किया कि' 'कालिदास' ही बनकर रहूँगा, किन्तु यह भावावेश का निश्चय था जैसा कि प्रतिध्वनि में उसी समय हृदय ने कह दिया कि यह "शेख़चिल्ली की कल्पना है", पर यह अवश्य है कि कवि पर अध्ययन, मनन और अनुभव का भूत सवार हो गया, साधन भी वैसे ही बनते गये, यद्यपि घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी फिर भी जैसे तैसे गाड़ी चलती ही रही।

दैवयोग से जिज्ञासु को गुरु भी साक्षात् बृहस्पति के समान आर्ष आसन पर आसीन मिल गये। साथ ही कवि ने भी घोर प्रयास से पढ़ना प्रारम्भ कर दिया, साहित्य में रस आने लगा; परन्तु अथाह सागर की थाह कैसे मिल सकती है, वह तो तात्त्विक ज्ञान पर ही निर्भर है, किसी के प्रेम का पथ जिसकी सीढ़ियाँ हैं, स्नेह की तपस्या एवं साधना ही से वहाँ पहुँचा जा सकता है।

बचपन का शासन समाप्त होते ही जीवन निर्वाह की समस्या सामने आई। हमारे देश पर बलात् लदी हुई रूढ़ी के अनुसार पाँव फूलों की शृङ्खलाओं में बँध चुके थे। दूसरी ओर कविता–कामिनी का हृदय पर अधिकार था। न जाने कितना आकर्षण है साधना में, कितनी सुन्दर

हो देवि ! तुम; कितना मधुर है तुम्हारा प्यार, और कितना विशाल है तुम्हारा वियोग; कितनी मणियाँ लुटाती हो तुम आँखों में बैठ कर ।

कल्पना-कानन, सरित-तट, वर्षा की रिमझिम, फूलों की सुगन्ध, पाताल की थाह और आकाश की उड़ान, विधि ने तुम्हारे लिये ही रची हैं न ? किन्तु तुमने मेरा हाथ क्यों पकड़ लिया देवि ! मेरे हाथ में किसी दूसरी का भी हाथ है, कहीं तुम्हें सौतिया डाह तो नहीं होगा, सहचरी बना सकोगी उसे भी ? किन्तु वह बिलखे या भटके, कविता की बला से । उसे सृष्टि के समस्त सौन्दर्य से सज कर कवि के साथ घूमना, उसे इससे क्या लेना कि कोई भूखी है या नङ्गी, यदि कभी कविता से उसकी कथा छेड़ भी दी तो कागज़ पर आँसू बहा दिये; कभी भूख से छटपटाती हुई चर्चा छेड़ दी, तो अङ्गारे उगलने लगी; कभी स्नेह से प्रदीप्त प्रकाश दिखाया, तो सावन भादों की झड़ी लगा दी; कभी पैरों में पड़ी बेड़ियाँ झनझनाईं, तो मुण्डमालिनी का बाना पहिन लिया; कभी कोई डरावनी आकृति दिखाई दी, तो काँपने लगी; कभी कोई कौतुक दिखाया, तो सहम कर आश्चर्य-सागर में गोते लगाने लगी; और यदि श्मशान में बिखरे छीछड़े देख लिये, तो वीभत्स-रंगमंच पर उतर आई; यदि कभी किसी शेख़चिल्ली को देखा तो अट्टहास करने लगी; यदि कभी किसी शव को कन्धा दिया, तो संसार

से वैराग्य हो गया; संन्यासिनी बन गई, शान्ति ढूंढने लगी; बस तभी कवि छाया संसार की अन्तिम सीढ़ी पार कर दिव्य ज्योति में तादात्म्य रहस्य की सीढ़ियों पर चढ़ने लगता है।

छाया और रहस्य की चिरन्तन वियोगिनी छवि में प्रतिबिम्बित प्रतिमा प्रकृति तथा परमात्मा के शाश्वत स्वरूप में प्रतिमूर्त्त है। भावुक सहचरी सी संसृति की कराहों में राह बन कर ठोकरें खा रही है। आह और आँसुओं से शैलों को फोड़ती हुई सरिताओं की तरह प्रकृति के पग धो पृथ्वी को सींच रही है, किन्तु फिर भी छटपटा रही है। पानी की एक बूंद भी नहीं मिलती, आँखों के पानी से हृदय की आग नहीं बुझा करती। रहस्य-सागर में मिल अथाह तथा अमूल्य रत्नों की सम्राज्ञी बन गई, किन्तु फिर भी वह भिखारिन ही है। प्रेम की भूखी को यह दुनिया दुतकारों के अतिरिक्त कुछ नहीं देती। क्या प्रेम पाप है? क्या प्रेम का पुजारी तपस्वी नहीं? क्या प्रेम की प्रतिमा भगवान तक नहीं पहुँचाती? प्रेम के मार्ग में खड़े हुए शूलों! क्या कभी तुमने उस महारानी के दर्शन किये, जिससे विधि की रचना प्रकाश पाती है, जिसमें सब कुछ निहित है?

देखो, सब की आँखों के आगे दहकती हुई चिता की चिनगारियाँ चित्र बना रही हैं, जिसमें जलते हुए कवि के

प्राणों की तड़पन प्रदर्शन बन कर नर्त्तन कर रही है, किन्तु न प्राणान्त ही होते हैं, न अग्नि ही बुझती है, और न प्रेम की प्रतिमा शान्ति सम्राज्ञी के दर्शन ही होते हैं।

हिमाचल की तरह अटल कवि की आँखों से स्नेह की पवित्र गंगा बह रही है, हृदय-मन्दिर में महारानी की मूर्त्ति प्रेमासन पर आसीन है, जिसकी कान्ति में अमृत का प्रवाह है, जिसके प्रेम में परमात्मा के दर्शन हैं, जिसके कण्ठ में वाणी की वीणा है, जिसकी मुस्कान में प्रकाश की किरणें हैं, जिसके रोम रोम में शान्ति का नृत्य है, जिसकी कम्पन में क्रान्ति का आवाहन है, जिसकी आँखों में बिजली की कौंध है, जिसके इङ्गित में जीवन और मृत्यु का सामंजस्य है।

सरितायें जिसे स्नान कराती हैं, स्वभाव जिसका सिंहासन है, प्रकृति का सौन्दर्य जिसका शृंगार है, अम्बर की छवि जिसके वस्त्रों की प्रतिछाया है, इन्द्रधनुष जिसकी अँगड़ाई है, प्रीति के गीतों की रुनझुन जिसकी पगध्वनि है।

किन्तु यह क्या सुगन्धित सौन्दर्य की पटरानी बन्धनों में छटपटा रही है, समाज की आग में जल रही है, आँखों के पानी में बह रही है।

हथकड़ियाँ बोलीं, वियोग के अङ्गारे दहके, वीणा के तार टूटे, सौन्दर्य की होली जली, हाय ! निकली, एवं वियोग

की आहें चाहें बनकर बिकने लगीं; किन्तु वियोगी और वियोगिनी को कफन तक नसीब नहीं हुआ।

× × ×

वियोग में योग झाँका, आनन्द मन्दिर के द्वार खुले, संयोग की वीणा बजी, प्रेम की विजय हुई।

मेरी साधने ! मेरे भगवान ! यह मेरी मौलिक प्रेरणा है, मूक तपस्या है, पवित्र स्नेह है, जो आपने मुझे दिया था, आज वह तुम्हारे चरणों में चढ़ा रहा हूँ, मेरे पास अपना है ही क्या जो देव के चरणों में चढ़ाऊं ? केवल आपके चरणों में झुके हुए मस्तक की महानता ही न ? इसके अतिरित मुझे और क्या चाहिये ? बना रहे मेरा यह गौरव, अतः देव ! तुम्हारी देन तुम्हारे चरणों में सादर ··· ···· ··, यदि मैली हो गई हो तो क्षमा करना, कहीं तुम भी दुनिया की तरह मुझे ठुकरा न देना।

सदैव उपासना एवं साधना में-
तत्परता से संलग्न—

भगवान् के चरणों में
कृष्ण जन्माष्टमी
कारागृह

रघुवीरशरण 'मित्र'

क्रम

शीर्षक			पृष्ठ

शीर्षक			पृष्ठ

माँ !

जन्मभूमि ! जय, जगदम्बे ! जय, जयनिनादिनी ! जय जय जय ।
अजय, विजय, मृत्युञ्जय गति हो, सतत सत्य हो स्वच्छ हृदय ॥

जला पड़ा मृगमित्र, मृत्तिका,
मृगमरीचिका में बिखरे ।
मैं मृगतृष्णा, मेरा मानस,
ज्वाला में जल जल निखरे ॥
सुर ढीले हैं, दृग गीले हैं,
फिर भी मुस्काता जाऊँ ।
शिव, शुभ, शाश्वत स्वर में लय दो,
स्नेह सुधा सुर में गाऊँ ॥

वाणी ! वीणा, हंस हृदय दो, तुम विनम्रता मैं विनिमय ।
जन्मभूमि ! जय, जगदम्बे ! जय, जयनिनादिनी ! जय जय जय ॥

बन्दी

छालों में नैराश्य-स्नेह भर,
दीप जलाने आया हूँ।
बलिवेदी पर बलिदानों का,
ब्याज फलाने आया हूँ॥
मरघट में से फूल चुगे हैं,
उन्हें चढ़ाने आया हूँ।
कसक रहे हैं घाव हृदय के,
उन्हें दिखाने आया हूँ॥

आज हड्डियों के व्यापारी, करते मेरा क्रय विक्रय।
जन्मभूमि! जय, जगदम्बे! जय, जयनिनादिनी! जय जय जय॥

निर्ममता पर, निर्धनता पर,
नीर बहाने मैं आया।
जीते जी चख स्वाद मृत्यु का,
स्वाद चखाने मैं आया॥
चहल पहल के राजमहल में,
हल चलवाने मैं आया।
ईंधन बिना लाश सड़ती माँ!
जल से जलवाने आया॥

अरी अचेतन में चेतनते! देख देख कवि का निश्चय।
जन्मभूमि! जय, जगदम्बे! जय, जयनिनादिनी! जय जय जय॥

माँ !

आज प्रकृति की सुन्दरता में,
चार चाँद जड़ने आया।
उलझे प्रश्न और सुस्मृति की,
कारा में सड़ने आया॥
आज काव्य के अन्तस्तल में,
पाँच सत्य भरने आया।
आज विश्व के सिंहासन पर–
चीर हृदय धरने आया॥

आज अदृश्य, दृश्य में जननी ! हो जाने दो सुत को लय।
जन्मभूमि ! जय, जगदम्बे ! जय, जयनिनादिनी ! जय जय जय॥

मैं अणु अणु में प्रतिबिम्बित हूँ,
पर मेरा अस्तित्व कहाँ।
जो कल देखा, आज स्वप्न वह,
तत्त्व कहाँ, अमरत्व कहाँ॥
द्रष्टकूट निर्माल्य अम्बिके !
कवि के पास रहा ही क्या ?
सत्य चिरन्तन की परिभाषा,
कह दी और कहा ही क्या ??

नित्य निलय में चुगने आया, आँसू और फूल अक्षय।
जन्मभूमि ! जय, जगदम्बे ! जय, जयनिनादिनी ! जय जय जय॥

बन्दी

आदि अन्त के अन्दर रहता,
रहकर भी मैं रहा कहाँ ?
आँखों के पानी में बहता,
बह कर भी मैं बहा कहाँ ??
दीप जलाता, ठोकर खाता,
जाता हूँ मैं जहाँ जहाँ।
देखा करता, चित्रित करता,
उलझा रहता यहाँ, वहाँ॥

मैं परमेश्वर का प्रतीक हूँ, मैं स्वभाव का शुभ अभिनय।
जन्मभूमि ! जय, जगदम्बे ! जय, जयनिनादिनी ! जय जय जय॥

मैं अपने शोणित से विधि की,
रचनायें रचने आया।
और किताबों के पृष्ठों पर,
मर मर कर बसने आया॥
साथ साथ अपने श्वासों पर,
महल बनाता जाता हूँ।
अपने दीप बुझा कर जग में,
दीप जलाता जाता हूँ॥

किन्तु दीप्त है हृदय उसी से, तेजोमय जग, तम का क्षय।
जन्मभूमि ! जय, जगदम्बे ! जय, जयनिनादिनी ! जय जय जय॥

- रघुबीर भूषण मिश्र

बन्दी

तन पिँजरे में, झन झन क्रीड़ा,
पीड़ा रानी, मैं राजा ।
मन की भस्मी मन-मसान में,
जा जलती मृगतृष्णा जा ॥

बन्दी

यहाँ कहाँ हैं प्राण, प्राण तो–
पास प्राण के चले गये।
चाव जल गये, भाव जल रहे,
मले घाव, मन छले गये ॥

अब साथी मकड़ी के जाले,
या अतीत के स्वप्न-सुमन।
या आँखों के साथ बरसते,
कवि के दो नयनों से घन ॥

पैरों में बज रहीं बेड़ियाँ,
पहरे पर जल्लाद खड़ा।
खड़ी खड़ी रोतीं रँगरलियाँ,
पिँजरे में कङ्काल पड़ा ॥

तबला बना बजाता तसला,
तीखी तीखी तान लगा।
प्रतिध्वनि में हथकड़ियाँ गातीं,
ठग ठगनी ने तुझे ठगा ॥

तन बन्दी है, मन बन्दी है,
बन्दी तेरा स्वर भी क्यों ?
दाने दाने पर ताले हैं,
ताले वाणी पर भी क्यों ??

बन्दी

क्रान्ति क्रान्ति के गीत सुनादे,
"शिव ताण्डव" तूफान चलें।
ताले टूटें, बन्दी छूटें,
जले दासता, स्वप्न जलें॥

तेरा कैसा मेला क़ैदी!
होली, ईद, दिवाली क्या?
काल कोठरी, "काली टोपी",
काली रात, उजाली क्या??

काला कम्बल, ढूला, तसला,
तेरी और कहानी क्या?
कच्ची पक्की सात रोटियाँ,
जीना और जवानी क्या??

मूँज कूटता, बान बट रहा,
या चक्की की घरर घरर,
पत्ते, चने, मार कोड़ों की,
या कोल्हू की चर मर चर॥

सूख गये आँखों के आँसू,
चिढ़ चिढ़ कर अरमान चले,
दीप-शिखा सी मधुर याद में,
स्नेह-शलभ से प्राण जले॥

बदली

काली बदली ! काली बदली !

बिछुवे, पायल पहिने आती,
झन झन झनकार सुना जाती,
रिमझिम रिमझिम करती चलती,
छुप छुप.छुप करती गली गली ।

काली बदली ! काली बदली !

अति रञ्जित अम्बर धारण कर,
रस, रङ्ग, रूप यौवन-घट भर,
किसको छलने छवि ! कहाँ चली,
आँखों से गिरा रही बिजली ।

काली बदली ! काली बदली !

चन्दन चाँदी सी चमकीली,
पल्लव, पराग पीली पीली,
सोने की स्वर्णिल आभा सी,
नन्दन-कानन की खिली कली ।

काली बदली ! काली बदली !

बदली

घूँघट खोला, बिजली निकली,
मोती बरसाती हुई चली,
ओ री पगली ! ओ री पगली !
किस ओर चली, किस ओर चली ?

काली बदली ! काली बदली !

इठलाती मुस्काती आती,
क्या प्रियतम से मिलने जाती ?
पथ पथ में रुक रुक झाँक झाँक—
क्या ढूँढ रही अलि ! गली गली ।

काली बदली ! काली बदली !

तू कारागृह से आती है,
कुछ सखी ! सूचना लाती है,
कहदे जल्दी, कहदे जल्दी –
तू बड़ी भली, तू बड़ी भली ।

काली बदली ! काली बदली !

बन्दीगृह में भैया मेरे,
मैं पैरों पड़ती हूँ तेरे,
बतलादे उनका शीघ्र हाल—
इस मुरझे मन की खिले कली ।

काली बदली ! काली बदली !

बन्दी

उड़ती नभ में यदि पर होते,
सदियाँ बीतीं रोते रोते,
मेरे आँसू चुग चुग कर क्यों–
अग जग में लुटा रही पगली।

काली बदली! काली बदली!

वे वीर न मरने से डरते,
भैया क्या कारा में करते?
एकाकी बैठे बैठे क्या –
वे काता करते हैं तकली।

काली बदली! काली बदली!

आँखें दर्शन को तरस रहीं,
आँखें रह रह कर बरस रहीं,
जो विरह स्नेह अलि! खौल रहा–
उसमें भगनी जा रही जली।

काली बदली! काली बदली!

मैं जलूँ न जलती आग बुझे,
पर मेरी है सौगन्ध तुझे,
यह सिसक सिसक कर रोने की,
अलि! ख़बर न जाये वहाँ चली।

काली बदली! काली बदली!

बदली

रति-रात मना आओ आली !
फिर बन जाना दुर्गे, काली ।
कर देना कारागृह खाली –
नाशक पर गिरा गिरा बिजली ।

काली बदली ! काली बदली !

जब फूंक दासता आयेंगे,
जब छत्र छीन कर लायेंगे,
तब बहिन करेगी अभिनन्दन –
इतने तो उनसे दूर भली ।

काली बदली ! काली बदली !

देशाभिमान

पर नोच दिये, छटपटा रहा, खोया अतीत फिर मूर्त्तिमान ।
तसले पर तीखी शेष तान ।।

मुस्काना मधुरभाषिणी का,
इठलाना चाँद चाँदनी का,
वह हास जला, जल रहे प्राण–
मेरी दुनिया मरघट मसान ।

पर नोच दिये, छटपटा रहा, खोया अतीत फिर मूर्त्तिमान ।
तसले पर तीखी शेष तान ।।

देशाभिमान

कल साथ साथ हमने खाया,
आँखों में चित्र उतर आया।
आदान हृदय का आँखों में—
आँखें करती थीं हृदय दान।

पर नोच दिये, छटपटा रहा, खोया अतीत फिर मूर्त्तिमान।
तसले पर तीखी शेष तान॥

कर, कर में ले क्रीड़ा करना,
रस बरसा बरसा घट भरना,
इठला इठला कर मुस्काना,
जादू बनकर बन गये ध्यान।

पर नोच दिये, छटपटा रहा, खोया अतीत फिर मूर्त्तिमान।
तसले पर तीखी शेष तान॥

आँसू बहते आ रही याद,
अब दूर कुमुदनी दूर चाँद,
दोनों जलते, सूनी रजनी,
विधवा है किस पर करे मान।

पर नोच दिये, छटपटा रहा, खोया अतीत फिर मूर्त्तिमान।
तसले पर तीखी शेष तान॥

बन्दी

वह मिलन "समन्दर" ज्वाला सा,
मद्यप मद मदिरा प्याला सा,
सम्बन्ध भङ्ग वह भोले सा,
हम भूले थे अपमान मान।

पर नोच दिये, छटपटा रहा, खोया अतीत फिर मूर्त्तिमान।
तसले पर तीखी शेष तान॥

यद्यपि मैं दूर, विषाद मुझे,
तड़पाती हरपल याद मुझे,
मिट जाऊँ पिँजरे में सड़ सड़,
पर मातृभूमि का दूँ न मान।

पर नोच दिये, छटपटा रहा, खोया अतीत फिर मूर्तिमान।
तसले पर तीखी शेष तान॥

हथकड़ियाँ फूलों की लड़ियाँ,
तोड़ूँगा बन्धन की कड़ियाँ,
अभिषेक लहू से कर जाऊँ—
भारत पर हो देहावसान।

पर नोच दिये, छटपटा रहा, खोया अतीत फिर मूर्त्तिमान।
तसले पर तीखी शेष तान॥

देशाभिमान

चाहे डण्डा बेड़ी डालें,
चाहे ज़िन्दे कवि को खालें,
चाहे फाँसी पर लटकादें।
बेचूँगा कभी न स्वाभिमान।

पर नोच दिये, छटपटा रहा, खोया अतीत फिर मूर्त्तिमान।
तसले पर तीखी शेष तान॥

जलता हूँ पर सन्देश नहीं,
जीने की इच्छा शेष नहीं,
पर विजय पताका लहरा कर –
रक्खूँगा निज देशाभिमान।

पर नोच दिये, छटपटा रहा, खोया अतीत फिर मूर्त्तिमान।
तसले पर तीखी शेष तान॥

उठ प्रेम मिलन, उठ आलिंगन,
उठ सिंहासन, उठ अभिनन्दन,
अधरों के चुम्बन उठो उठो–
लाओ लाओ देशाभिमान।

पर नोच दिये, छटपटा रहा, खोया अतीत फिर मूर्त्तिमान।
तसले पर तीखी शेष तान॥

आँसू

ये भारत माँ के आँसू हैं,
या किसी वियोगी की ज्वाला।
या मेरे गीतों का क्रन्दन,
या फूट पड़ा उर का छाला॥

या श्रम कण हैं ये बन्दी के,
जो चक्की चला चला आये।
या दुखियारी के रोने पर–
चुग चुग आँसू बादल लाये॥

या बन्दी के घरवालों की,
यह याद रो रही है नभ में।
या प्रीति तड़ित सी तड़प तड़प,
अवसाद धो रही है नभ में॥

या बनी कल्पना ही बन्दी,
रो रो आँसू बरसाती है।
या बनी भावना ही बदली,
अन्तर की आग बुझाती है॥

या लाश देखकर भारत की,
ये घन रह रह रोया करते।
या फाँसी के खूनी तख़्ते—
घन बरस बरस धोया करते॥

या जलता देख देख रवि को,
घन आग बुझाने आते हैं।
या बन्दी के बलिदानों पर,
बादल मोती बरसाते हैं॥

या कोई प्रणय पथिक मर कर,
छवि से मिलने को तरस रहा।
या उर की आग बुझाने को,
यह सागर नभ से बरस रहा॥

ये खूनी दाग़ चमकते हैं,
या नयनों में लाली घन के।
या देशभक्त मर देव हुए,
ये अरुण कमल सुरकानन के॥

या दिल्ली के खूनी दर की,
घन-दर्पण में यह प्रति छाया।
या रंग तिरंगे झण्डे का,
प्रतिबिम्बित इन्द्रधनुष लाया॥

या लहू भरे इन गीतों से,
हो गये गगन के नेत्र लाल।
या जली दासता की होली,
रोली का नभ में सजा थाल॥

पीड़ा

जलता प्रतिपल, आँखों में जल,
जल में ज्वाला, पर जल न सका।
चलते चलते घुटने टूटे,
पर चहल पहल तक चल न सका॥

सब स्वाह हो गया जल भुन कर,
केवल आँखों में जल बाक़ी।
रह गई व्यथा, रह गया रुदन,
या जलता अन्तस्तल बाक़ी॥
कारागृह की दीवारें हैं,
या क़दम क़दम पर अङ्गारे।
अत्याचारों की छुरियाँ हैं,
या अपनों ही के दुतकारे॥

पीड़ा

व्रण है, प्रण है, नश्वर तन है,
गल रहा हृदय, पर गल न सका।
जलता प्रतिपल, आँखों में जल,
जल में ज्वाला, पर जल न सका॥

आँखों के खारी पानी में,
अस्थियाँ बहाने को बाक़ी।
खटिया पर पड़े पड़े अपनी–
ज़िन्दगी जलाने को बाक़ी॥
रोगी शरीर, सूखी ठटरी–
हड्डियाँ चसकने को बाक़ी।
जल चुकी चिता, पीड़ा न जली,
रह गई कसकने को बाक़ी॥

यह प्रेम मृत्यु है या जीवन,
यह प्रश्न अभी हो हल न सका।
जलता प्रतिपल, आँखों में जल,
जल में ज्वाला, पर जल न सका॥

मैंने चाहा क़फनी पहिनूँ,
पर वह भी मुझको मिल न सकी।
मानव में मानवता न मिली,
छीले से पीड़ा छिल न सकी॥
रवि ने सरोज के अन्तर में,
रहना चाहा पर रह न सका।
कवि कहते कहते हार गया–
पर अपने मन की कह न सका॥

बन्दी

दे दिया हृदय, पी गया गरल,
हो गई मृत्यु, उठ चल न सका।
जलता प्रतिपल, आँखों में जल,
जल में ज्वाला, पर जल न सका॥

फट रहा हृदय, लग रही आग,
लपटें उठतीं, प्याला रीता।
हाथों में छुरियाँ लिये हुए,
देखो यह कौन लहू पीता ?
मैं सोच रहा हूँ विष पीलूँ,
प्राणों को सुख से उड़ने दूँ।
पैरों से चूने लगा लहू,
खूनी मंज़िल से मुड़ने दूँ॥

मेरे जीवन की प्याली में,
विष ढला रोज़ मधु ढल न सका।
जलता प्रतिपल, आँखों में जल,
जल में ज्वाला, पर जल न सका॥

प्रतीक्षा

अभी अभी बिजली सी दमकी,
प्राण ! तुम्हारी प्रतिछाया ।
आँखें चौंधी, बिजली दौड़ीं,
सोचा मन-चाहा आया ॥

फूली नहीं समाई मन में,
मुँह माँगा वरदान मिला ।
प्राण मिल गये, प्यार मिल गया,
क़िस्मत का अभिमान मिला ॥

बन्दी

'शुभे ! शुभे ! दर्वाज़ा खोलो',
कानों में आवाज़ पड़ी ।
चौंकी, भौंचक्की सी उठकर,
मैं सहसा हो गई खड़ी ॥

संकल खोली, तुम्हें न देखा,
पथ पर इधर उधर झाँकी ।
बैठ गया मन, सहम मर गई,
खड़ी रह गई एकाकी ॥

चमक चमक फिर छिप जाते हो,
प्रियतम ! यह कैसी लीला ?
बुला रहीं ये गीली आँखें,
बुला रहा यह मुँह पीला ॥

बिना तुम्हारे दर्शन के अब,
लुटती मन-मण्डी रहती ।
खड़ी खड़ी खिड़की में रोती,
सूनी पगडण्डी रहती ॥

अलि ! पगडण्डी ! कहाँ गये वे,
कहाँ तुम्हारी कारा है ?
तुम्हें अनेकों प्यार करेंगे,
मेरा एक सहारा है ॥

तुम दोनों की टहल करूँगी,
दूर न कर उनको मुझसे ।
उनके दर्शन की भिखमंगी,
भिक्षा माँग रही तुझसे ॥

प्रतीक्षा

धुँधला सा दीपक झँझा में,
बुझा जा रहा एकाकी ।
आओ आओ आओ प्रियतम !
दिखलाओ मनहर झाँकी ॥

इस जलते दीपक पर स्वामी !
आ आ शलभ जला करते ।
स्नेह सिखाते, दीप-शिखा पर,
परवाने जल जल मरते ॥

पर मैं मिलने की आशा में,
जलती जलती बच जाती ।
आओ आओ चीख़ रही मैं,
याद न क्यों मेरी आती ?

रात अँधेरी, एकाकी हूँ,
लूट न ले मुझको कोई ।
आज न क्या प्रियतम ! पूछोगे,
'क्यों चुपके चुपके रोई ?'

मोती भरे हुए आँचल में,
आओ न्यौछावर करदूँ ।
धरी धरोहर, आओ आओ,
ब्याज सहित पल्ला भरदूँ ॥

दिवाली

आली ! आली ! आज दिवाली ।
क्या कहती हो आज दिवाली ?
कैसी, किसकी, कहाँ दिवाली ?
उजड़ा कानन निकट न माली ॥

मुझे व्यर्थ क्यों बहकाती हो,
कह कर आज दिवाली आली !
देखो, जली न दीप अवलियाँ,
घर में घिरीं घटायें काली ॥

जली कहाँ अलि ! मोमबत्तियाँ,
टँगे कहाँ कन्दील सहेली !
बनी सर्पिणी डसने आती,
भन भन करती आज हवेली ॥

जाने क्यों अलि ! भिलमिल भिलमिल,
दीप जल रहे डगर डगर में ।
जाने क्यों यह जगमग जगमग,
आज हो रही नगर नगर में ॥

लाज न आती मना रहे हैं,
भारतवासी आज दिवाली ।
काली काली गली गली है,
आली ! यह कैसी उजियाली ?

बुझे पड़े दीपक घर घर में,
कारागृह में बन्द सितारे ।
माँस नोच कर लहू पी रहे,
मेरे प्रियतम का हत्यारे ॥

दिवाली

दो दिन रही न साथ नाथ के,
मैंने मन की कहाँ निकाली।
मेरे घर में अन्धकार है,
तुम कहती हो आज दिवाली॥

लादो वह तलवार कहीं से,
जिसमें महामृत्यु की क्रीड़ा।
आज क्रान्ति सी निकल रही है,
दबी हुई अन्तर की पीड़ा॥

मुण्डमालिनी का खाण्डा ले,
पहिनूँगी मुण्डों की माला।
रुद्र बनूँगी बाल बाल में,
गूथ गूथ कर विषधर काला॥

रक्त, वसा, आमिष, मज्जा से,
डगर डगर घर घर लीपूँगी।
बैठ बैठ लोथों के ऊपर,
अधरों से शोणित खींचूँगी॥

कटे सरों में घी भर भर कर,
दीप जलाऊँगी घर घर में।
रुण्ड मुण्ड लाशें टाकूँगी,
नगर नगर में डगर डगर में॥

आज नहीं कन्दील टकेंगे,
टकें हड्डियाँ, मने दिवाली।
स्वतन्त्रता का पूजन होगा,
होगी निज हाथों में थाली॥

करो या मरो

शान्ति के कर्णधार,
अचला के अमर तत्त्व,
विश्व के वहित्र दृढ़,
लोहे के पिँजरों में कर दिये बन्द जब—
प्यार परिवर्त्तन सा गूँजा स्वर "गाँधी" का—
करो या मरो अब।
अग्नि में घृत गिर गया इन शब्दों से।
धधका तत वैश्वानर,
सिंह से गर्जे वृक,
सिहर कर सहमें सृक,
'विधि' की विडम्बना कम्पित सी होगई,
भूतल तलातल में क्रान्ति ही क्रान्ति थी।
तीर्थ के पर्व-सी बलिदान-बेला में—
'सर रख हथेली पर'—
झण्डे तिरंगे ले,
चल पड़े निहत्थे जय जय के सुनाते घोष,
चल पड़ा दमन चक्र अन्धी तलवार ले।
रक्त ही रक्त था, अग्नि ही अग्नि थी,
निकट परिवर्त्तन था,

करो या मरो

हिल गया राज्य किन्तु हिलकर ही रह गया।
अब भी वह राज है, अब भी वह ताज है,
मानवता खूनी है।
बन्दी है भारत माँ, बन्दी हैं वीर पुत्र,
पैरों में बेड़ियाँ, खड़ी हथकड़ियाँ हैं।
गोलियाँ चलती हैं, चितायें जलती हैं,
मृत्यु है, मातम है, रोदन ही रोदन है।
बढ़ चला अत्याचार, कारा के खुले द्वार,
रक्त की प्यासी फाँसी ने फाड़ा मुँह,
पी गई लहू यह कितने निहत्थों का।
भारत के वीरों की जलतीं चितायें, पर–
शूली यह शेष है।
बच गई 'बिस्मिल' की दहकती ज्वाला से,
सतलज पर जलती उन तीनों चिताओं से।
भारत के दुःखों से और दुर्भिक्षों से,
जेलों में क़ैद देशभक्तों की आहों से,
हाय! फिर प्रस्तुत है, हाय! फिर प्रस्तुत है–
पीने को रक्त यह,
देश के मुकुटों का,
देश के ऋषियों का,
भोले से सिंहों का।
निर्मम हत्यारी ओ राज्य की दुलारी डोर!
छोड़दे पाप अब, छोड़दे हत्या अब,
दे दिया शाप यदि चीखकर दुखियों ने–
भस्म हो जायेगी।

तार

तार आया ! तार आया !

तार पढ़ कर लोचनों से –
आँसुओं के तार छूटे ।
हाय ! जब वह मर गई है,
क्यों न मेरे तार टूटे ॥
ज़हर बन कर तार उसकी –
मृत्यु का सन्देश लाया ।

तार आया ! तार आया !

तार

सींकचों में सह रहा सब,
सहचरी ने साथ छोड़ा।
निविड़ तम में भटकता हूँ,
मृत्यु ने मानस निचोड़ा॥
मौत का सन्देश कैसा?
मौत लाया! मौत लाया!

तार आया! तार आया!

मैं न कारा से चलूँगा –
जेल से अर्थी चलेगी।
सुरसरी के स्वच्छ तट पर –
अब चिता मेरी जलेगी॥
तार मेरी ज़िन्दगी के –
तोड़ने दो तार आया।

तार आया! तार आया!

हाय! पिँजरे में तड़प कर –
मर गया बन्दी बिचारा।
तोड़ बन्धन चल दिया, जब–
प्रेम ने पति को पुकारा॥
याद में उसकी सिसक कर –
दृगों ने पानी बहाया।

तार आया! तार आया!

चाँद

चमक रहे हो चाँद ! गगन में।

बरस रही अम्बर से चाँदी,
रात्रि चित्र चित्रित करती।
बिखरी छवि, छाई उजियाली,
धरती जग मग जग करती ॥
देख रहे हो मैं पिँजरे में-
जाग रहा हूँ एकाकी।
बन्द सींकचों में बन्दी की-
तुम पर ही आशा बाक़ी ॥
तुम उड़ते हो मैं बन्धन में।
चमक रहे हो चाँद ! गगन में ॥

बतलाओ कर कृपा सुधाकर !
कैसे है मेरी रानी ?
क्या उसकी आँखों का बहता-
मेरी आँखों से पानी ?
सुधा पिला आओ रानी को-
या मन मदिरा का प्याला।
इधर लौटकर जब आओगे-
दे दूँगा मानस-माला ॥
रानी ही जीवन जीवन में।
चमक रहे हो चाँद ! गगन में ॥

चाँद

ख़बर नहीं दी, और जा रहे,
बन्दी तुम्हें विलोक रहा।
ठहरो, कहाँ जा रहे दौड़े,
चीख़ चीख़ कर रोक रहा॥
लगा रहे अन्तर में ज्वाला—
खिला रक्त से फाग रहे।
या शशि! मेरा चाँद देखकर—
लज्जित होकर भाग रहे॥
लगा कालिमा शुचि आनन में।
चमक रहे हो चाँद! गगन में॥

उससे मेरी करुण कहानी—
कह कर उसे रुला आये।
तुम तो सुधाधाम हो निर्मम!
तुम भी गरल घोल लाये॥
और उषा के आँचल में मुँह,
ढक कर, डरकर भाग रहे।
तुमने चोरी करी रात भर—
हम पिँजरे में जाग रहे॥
तुम भी जला रहे बन्धन में।
चमक रहे हो चाँद! गगन में॥

सहेली से

गोल गोल हरिणी सी आँखें,
आज भरी क्यों आती हैं ?
कहाँ चाँद की हँसी और क्यों,
आँखें ज़हर बहाती हैं ?
आज न क्यों मदिरा सी मस्ती,
मकराकृत सुन्दर बाले !
आज न क्यों पहिने आभूषण,
छम छम छम करने वाले ?

सहेली से

बोल बोल, मुँह खोल सहेली !
पूछ रही कब से आली !
क्यों बदली में आज चाँद है,
घिरीं घटायें क्यों काली ?
पूछ रही है मुझ से आली !
ले सुन कह दूँ करुण कथा ।
वृथा व्यथित होगी तू सुनकर,
हृदय-विदारक, हृदय-व्यथा ॥

आज यन्त्रणायें वे सहते,
करते थे जो प्यार सखी !
बन्द पड़े वे बन्दीगृह में,
जिन पर था शृङ्गार सखी !
काले काले बाल व्याल ये,
आज मुझे डसने आते ।
रूपक, रूप, रसीले व्यञ्जन,
गहने काट काट खाते ॥

पाले की ठिर और सहेली !
वे दो कम्बल में सोते ।
उन्हें हृदय से लगा सुलाती,
पास अगर मेरे होते ॥
लेकिन श्वास श्वास में अब तो,
याद तड़प कर रह जाती ।
हृदय-वेदना उनकी पीड़ा,
सिसक सिसक कर कह जाती ॥

कला

प्रेयसी ! वे प्रथम दर्शन,
प्राण मेरे बन गये हैं।
पर तुम्हारे कमल से दृग,
तीर बन कर तन गये हैं ॥
वासना सी आ हृदय में,
छवि ! घटा सी छा गई हो।
कवि-हृदय में कल्पना या–
भावना सी आ गई हो ॥

रूप छू जो पवन चलता,
पवन वह सुन्दर मलय का,
माँग में सिन्दूर रूपसि !
घाव है मेरे हृदय का ॥
दृगों में लाली न रानी !
बूँद मेरे रक्त की है।
कान्ति गालों पर गुलाबी,
प्यास तेरे भक्त की है ॥

लटकता यह नाग कटि पर,
मन किसी का डस चुका है।
मुस्कराहट में बँधा कवि,
स्नेह उसमें फँस चुका है॥
और यह कचपाश रानी!
चाँद ले आया सवेरे।
मैं भ्रमर सा झूमता हूँ,
लोचनों पर प्राण! तेरे॥

रूप अधरों से सुगन्धित,
रागिनी सी उड़ रही है।
चारुवर मनहर चिबुक से,
दृष्टि कवि की जुड़ रही है॥
नाक का मोती दमक कर,
दामिनी मुझ पर गिराता।
हंसिनी सी चाल तेरी,
चाँद चरणामृत पिलाता॥

वज्र से ये दो खिलौने,
चोट हृद पर कर रहे छवि!
बन्द चोली में पड़े भी,
प्राण मेरे हर रहे छवि!
यामिनी में स्वप्न-पट पर,
देखता मैं चित्र तेरे।
तान कर जब विश्व सोता,
टपकते तब अश्रु मेरे॥

मानिनी! आँचल पसारे,
माँगता भिक्षा भिखारी।
तुम कहो अपना मुझे छवि!
मैं कहूँ छवि! प्राणप्यारी॥
हासिनी! मैं शरद ऋतु हूँ,
शरद ऋतु की चाँदिनी तुम।
प्रेयसी! मैं मेघमाला,
चिर दमकती दामिनी तुम॥

कमलिनी! पिक-भाषिणी तुम,
सारिके! सरसो–सुमन मैं।
सूर्य हो तुम, धूप हूँ मैं,
अगरु तुम, चन्दन पवन मैं॥
तोड़ हथकड़ियाँ मिलो छवि!
तुम हँसो कवि को हँसाओ,
दूर क्यों झिझकी खड़ी हो,
पग ठिठकते, मन बढ़ाओ॥

कह रहा था जब किसी से,
मैं यही अपनी कहानी।
और अन्धी बन गई थी,
वासना में जब जवानी॥
तब किसी भावुक हृदय की,
सामने से लाश आई।
वासना में मृत्यु झाँकी,
दिव्य देवी जगमगाई॥

ज्योत्स्ना

शुभ्र चाँदिनी !
दमक दामिनी !
मूक भाषिणी !
मधुर हासिनी !
गगन वाहिनी !
शुभ सुवासिनी !

शशि मुख वाली !
हँसने वाली !
मधुरस वाली
मणियों वाली
मदिरा वाली
पीने वाली

बन्दी

कर न सबेरा,
रहे अँधेरा,
डाल न डेरा,
पास न मेरा,
क्यां है तेरा,
साथ चितेरा।

पर पति तेरा,
महा - अँधेरा,
शशि है मेरा,
तम है तेरा,
होड़ कर रही,
सुधा भर रही।

कहाँ चाँदना ?
गौरव इतना,
किस पर करती,
शशि पर मरती,
निशि में आता,
प्रातः जाता —

रो रो निशि भर,
बदन छिपा कर,
भागा डर डर,
लज्जित होकर,
मेरा पति पर,
अलि ! निशिवासर।

दो पथ

उधर बज रहा शंख, इधर है, बिछुवों की झनकार।
उधर धधकती आग, इधर है, प्राण! तुम्हारा प्यार॥

कंकालों के क्रन्दन सुनता,
शोषक के शोलों से भुनता,
शुभे! उधर दुखियों के क्रन्दन,
देवी! इधर तुम्हारे बन्धन,

स्वतन्त्रता का समर छिड़ा है, भारत रहा पुकार।
उधर बज रहा शंख, इधर है, बिछुवों की झनकार॥

बन्दी

सुनूँ देश की या छवि ! तेरी,
आज दशा 'दशरथ सी' मेरी,
लेकिन बोल रही रणभेरी,
कैसा प्यार ? कहाँ की देरी ?

या तो सर दूँगा, या 'सर कर', सर लाऊँ दे हार।
उधर बज रहा शंख, इधर है, बिछुवों की झनकार॥

चला छोड़कर आज तुम्हें मैं,
पहिनाऊँगा ताज तुम्हें मैं,
राज्य छीन लाऊँगा रानी !
कैसा यह आँखों में पानी ?

निकल पड़ा मैं आज बुझाने, लाल लाल अङ्गार।
उधर बज रहा शंख, इधर है, बिछुवों की झनकार॥

मैं भी साथ चलूँगी प्रियतम !
खन खन में बदलेगी छम छम,
खींच कृपाण उठी क्षत्राणी,
रण में भभक उठी रुद्राणी,

चमक उठीं दोनों हाथों में, बिजली सी तलवार।
उधर बज रहा शंख, इधर है, बिछुवों की झनकार॥

चमके लाल लाल अङ्गारे,
दमकीं बिजली सी तलवारें,
भभके पति पत्नी के भाले,
चलीं गोलियाँ, टूटे ताले,

बम बम बम बम महादेव की, गूंज उठी ललकार।
उधर बज रहा शंख, इधर है, बिछुवों की झनकार॥

पति से

मैंने कब माँगा तुम से धन ?

दे दो चाहे रूखी रोटी,
लादो चाहे मोटी झोटी,
मारो या कहो खरी खोटी,
काटो चाहे बोटी बोटी,
जब पास पड़ौसिन आजातीं,
कैसे ढक लूँ चिथड़ों से तन ?
मैंने कब माँगा तुम से धन ??

जाड़ों की शीतल हवा नाथ !
फिर चढ़ा न अब तक तवा नाथ !
मैं तो रह सकती हूँ भूखी,
खा सकती हूँ रूखी सूखी,
पर तनिक तनिक से बच्चों का—
माँ कैसे देखे उघड़ा तन ?
मैंने कब माँगा तुम से धन ??

बन्दी

होता न नाथ! जिस दिन आटा,
इन मीठे ओठों को चाटा,
पूछे न कहीं प्रतिवेशी यह–
क्यों नहीं जलाया चूल्हा, कह।
प्रभु! घर की लाज बचाने को–
माँजा करती सच्चे बर्तन।
मैंने कब माँगा तुम से धन?

कब माँगे हैं आभरण नाथ!
सारे स्वर्गिक सुख नाथ-साथ,
प्रिय लगा मुझे मंडन किस क्षण,
मैंने मंडन माना अहि-फण,
शृंगार स्वयम् ही हो जाता–
जब हँसते प्रभु के कमल-नयन।
मैंने कब माँगा तुम से धन?

अपना अन्तर कर रहे दान,
बदले में मिलता बहुत मान,
पर घर का कैसे चले काम,
मिल गई सुबह या कभी शाम,
कविता क्या दे देती रोटी–
क्या नाथ! जीविका का साधन?
मैंने कब माँगा तुम से धन??

पत्नी से

दुःखों पर चढ़कर बढ़े चलें,
काटें पर काटें हँस हँस कर।

पति करता तुझको प्यार प्रिये!
सुख मधुरस का भण्डार प्रिये!
मुरझाया फिर क्यों आज प्रिये!
तुझ पर किसका ऋण ब्याज प्रिये!
क्यों रोती रात रात दिन भर?
दुःखों पर चढ़ कर बढ़े चलें,
काटें पर काटें हँस हँस कर॥

बतला जाऊँ किसके दर पर,
अक्षय निधि है तेरे घर पर,
तू इस मन–नगरी की रानी,
मैं राजा तुझ पर अभिमानी,
क्या स्वाभिमान बेचूँ दर दर?
दुःखों पर चढ़कर बढ़े चलें,
काटें पर काटें हँस हँस कर॥

वह भूखा नहीं सुलाता है,
वह जग का जीवन-दाता है,
मन दुखी न कर मेरी रानी!
तू दानी, तेरा पति दानी,
इस इन्द्रजाल के सुख विषधर।
दुःखों पर चढ़कर बढ़े चलें,
काटें पर काटें हँस हँस कर॥

स्वयम्

मन की कहता पर शेष तथा।

मैंने न किसी का मन तोड़ा,
मैंने न कभी भी धन जोड़ा,
मैं दुनिया का कर रहा भला,
फिर भी जग खाता जला जला,
मैं कैसे कहदूँ करुण कथा ?
मन की कहता पर शेष तथा ॥

रोते हँसते कटता जीवन,
रूखे सूखे टुकड़े व्यंजन,
पत्नी कहती कुछ करो करो।
स्वामी ! बच्चों का पेट भरो,
लज्जा कहती मत कहो व्यथा।
मन की कहता पर शेष तथा ॥

कविता कह कर सुनलीं ताली,
बस कविता की क़ीमत पाली,
यह राज ताज, यह है समाज,
जिसमें भूखा मर रहा आज,
यह सुख कह दूँ या कहूँ व्यथा।
मन की कहता पर शेष तथा ॥

जाओ

तुम कहती हो जाओ ।

हँसते हँसते विदा करो छवि !
मधुर मधुर कुछ गाओ ।
फिर न लौटकर मैं आऊँगा,
हँसता चाँद दिखाओ ॥
मन में हँसो, हँसो अधरों पर,
पथ में हँसी बिछाओ ॥

लो मरघट ले जाओ ।
तुम कहती हो जाओ ॥

बन्दी

जाता हूँ मैं तुम्हें छोड़ कर,
ले आँखों में पानी।
दुनिया की चर्चा से डर कर—
काँप गईं तुम रानी !
लक्ष्यहीन जा रहा आज मैं,
जग में छोड़ कहानी।

तरुणी ! मत तरसाओ।
तुम कहती हो जाओ ॥

टूटा हुआ हृदय देकर क्यों—
जला रही हो देवी !
हाथों से मधु छीन ज़हर क्यों—
पिला रही हो देवी !
कच्चे धागे तोड़ मृत्यु क्यों—
बुला रही हो देवी !

लो फिर चिता जलाओ।
तुम कहती हो जाओ ॥

अग्नि-पथ

आज न जाने किन महलों में,
तेरा वह दीपक जलता है,
अन्धकार है, दुतकारे हैं,
तू ठोकर खा खा चलता है ॥

यह तो बहरों की दुनिया है,
क्यों पागल राही ! चिल्लाता,
यह मरघट है, अरे लौट जा,
यहाँ कहाँ जलने को जाता ॥

पूछा पथ, दुतकारे खाये,
दुनिया का यह न्याय देखले।
हाय देखले अपने मन की,
अन्यायों की आय देखले ॥

नहीं चोर है, नहीं लुटेरा,
नहीं माँगता जग से माया।
जिस घर में तेरा दीपक है,
उसका पता पूछने आया ॥

पर जलने वालों के जग में,
हृदय कभी भी खिल न सकेगा।
बनकर शलभ पहुँच दीपक तक—
स्नेह-शिखा में मिल न सकेगा ॥

सौगन्ध

मैं तो अन्तर का दर्शक हूँ,
देवी ! फिर डरती हो किस से,
यह पापी जग पाप समझता,
बच न सकी 'सीता' भी इससे ॥

तुम्हें बींधता रहता कोई,
आँखों के आँसू यह कहते ।
पर तुम मुझ से छिपा रही हो,
राख हो गईं सहते सहते ॥

दबा हृदय की व्यथा हाय ! तुम,
दारुण दुःख सहा करती हो ।
चुपके चुपके निर्जनता से,
मन की बात कहा करती हो ॥

मैं पवित्रता लेकर आता,
पर बनता बनवास तुम्हारा ।
मन भर आया और रो लिये,
बस इतना सा प्यार हमारा ॥

अब न कभी भी मैं आऊँगा,
पूरी यह इच्छा कर देना ।
मेरी शपथ, शपथ है उनकी,
'उन्हें हँसा कर तुम हँस लेना' ॥

भूलो

भूलो प्राण ! प्यार की बातें, यह जग कारागार।

मन के घाव दिखाते किसको,
शाश्वत स्नेह सिखाते किसको,
रह न सकेगा साथ हमारा,
हत्या करता जग हत्यारा,
धधक उठे अङ्गार।
भूलो प्राण ! प्यार की बातें, यह जग कारागार॥

अपना जीवन नाश करोगे,
सुन्दर स्वप्न न देख सकोगे,
नाथ ! व्यथा किससे कहते हो,
निशि दिन रोते ही रहते हो,
छोड़ो मुझ से प्यार।
भूलो प्राण ! प्यार की बातें, यह जग कारागार॥

जो न मुझे मेरे ! भूलोगे,
पग पग पर फाँसी झूलोगे,
छोड़ो कर ऐसी रानी का—
कब तक आँखों के पानी का—
दोगे तुम उपहार।
भूलो प्राण ! प्यार की बातें, यह जग कारागार॥

कैसे भूलूँ ?

कैसे तुम्हें भुलाऊँ देवी ! कैसे तुम्हें भुलाऊँ ?

तुम्हें देखता हूँ अन्तर में,
हर घर में, हर डगर डगर में,
देख रहा तुमको दर्पण में,
देख रहा तुमको कण कण में,
कहो, कहाँ अब जाऊँ ?

कैसे तुम्हें भुलाऊँ देवी ! कैसे तुम्हें भुलाऊँ ??

अब जीवन भर रोना ही है,
अब मरघट में सोना ही है,
बिना तुम्हारे जीवन ऐसे,
बिना नीर के मछली जैसे।
कैसे आग बुझाऊँ ?

कैसे तुम्हें भुलाऊँ देवी ! कैसे तुम्हें भुलाऊँ ॥

मैं क्या हूँ ?

मैं क्या हूँ ? क्या मैं हूँ शरीर ?

जो चार आदमी ले जाते,
ले जाकर जला चले आते,
जो लाश चिता में जलती है,
जो देह विश्व में ढलती है,

क्यों रह जाता खाली तुणीर ?
मैं क्या हूँ ? क्या मैं हूँ शरीर ??

बन्दी

जो प्यार किया करते मुझसे,
जो हृदय सिया करते मुझसे,
सीते शरीर से या मुझसे
बतला मन ! पूछ रहा तुझसे,

क्यों हृदय दिखाता चीर चीर ?
मैं क्या हूँ ? क्या मैं हूँ शरीर ??

यह कौन कान में आ बोला ?
'प्राणी बदला करता चोला ।'
बोलो तुम कौन छिपे तन में ?
बोला करते बैठे मन में,

तुम कौन बढ़ाते प्रश्न-चीर ?
मैं क्या हूँ ? क्या मैं हूँ शरीर ??

ये प्राण कहाँ उड़ जाते हैं ?
क्यों जाते हैं ? क्यों आते हैं ?
तुम पाये धन हो, खो मैं हूँ ।
मैं ढूंढ रहा हूँ जो 'मैं' हूँ,

क्यों मेरा मन रहता अधीर ?
मैं क्या हूँ ? क्या मैं हूँ शरीर ??

भिखारी

मैंने देखा एक भिखारी।

दर्द भरे शब्दों में भोला—
रो रो कर, रुक रुक कर बोला—
'ये परदार उड़े जाते हैं,
पर बेपर बैठे गाते हैं।'
हाथों में खाली प्याला था—
आँखों में रोती लाचारी।
मैंने देखा एक भिखारी॥

बन्दी

चौराहे की उस पुलिया पर,
ओढ़े फटी पुरानी चादर,
ठिठर रहा था, हाय! न थे पर,
देख रहा था कवि रह रह कर,
तभी सामने भव्य भवन से—
झाँकी कोई प्रेम—कुमारी।
मैंने देखा एक भिखारी॥

मस्तक खोया, मानस डोला,
अन्धा बन भिक्षुक से बोला।
रूप देख लो दिव्यानन का,
घाव देख लो मेरे मन का,
यह सुन, रोया उर भिक्षुक का-
रोयी आँखों की लाचारी।
मैंने देखा एक भिखारी॥

सुन्दरता से शाश्वत छवि की,
छिपी रात्रि-घन में छवि रवि की,
चाँद गगन से उतर खड़ा था!
बिखरा यौवन-सुधा पड़ा था,
मैंने निश्चय किया क़फ़न की-
मेरे लिये हुई तैयारी।
मैंने देखा एक भिखारी॥

भिखारी

माँग रहा था वह भिखमंगा,
इधर बही नयनों से गंगा,
उस भिक्षुक को जग ने देखा,
मुझको मरघट-मग ने देखा,
पैसा दे न सका भिक्षुक को—
उलटा मैं बन गया भिखारी।
मैंने देखा एक भिखारी ॥

वह राजाओं की बेटी थी,
जो प्रासादों में लेटी थी,
मेरे पास हृदय था केवल,
और आँसुओं ही का सम्बल,
फिर मेरी उजड़ी दुनिया में—
कैसे बसती राजदुलारी ?
मैंने देखा एक भिखारी ॥

मैं सुन्दरता देख रहा था,
कर उर का अभिषेक रहा था,
तभी किसी का शव कन्धों पर,
जाता देखा, रोया अन्तर,
नर कङ्काल झाँकता देखा—
चिता बनी सुन्दर-सुकुमारी।
मैंने देखा एक भिखारी ॥

शव का शिक्षक नर्तन देखा,
देखी पाप पुण्य की रेखा,
राजमहल झोंपड़ियाँ देखीं,
नयनों की हथकड़ियाँ देखीं,
उसी सड़क पर पत्थर देखे,
देखी हँसती राजदुलारी।
मैंने देखा एक भिखारी॥

फिर विराग ने आकर घेरा,
डाला कर्तव्यों ने डेरा,
मस्तक में संघर्ष छिड़ गया,
झूठे सुख से प्यार चिढ़ गया,
चित्र खिचित सा खड़ा रहा फिर-
चला बहाता आँसू खारी।
मैंने देखा एक भिखारी॥

स्वप्न

आज मैंने स्वप्न देखा।

चिता की चिनगारियों में,
तड़पते अरमान देखे।
लाश पर मनती दिवाली,
और गीले गान देखे॥
दग्ध मानस, दग्ध दुनिया,
राख देखी, शूल देखे।
जो हुए बलिदान उनकी—
अर्थियों पर फूल देखे।

हड्डियों का चयन देखा।
आज मैंने स्वप्न देखा॥

आज जो बन्दी, उन्हीं का,
विश्व पर अधिकार देखा।
झूमते झण्डे तिरङ्गे,
देश का दरबार देखा॥
आँख जब प्रातः खुलीं तो,
फिर पुराना वेश देखा,
जेल में बन्दी पड़ा था—
और द्वूला शेष देखा॥

दानवों का दमन देखा,
आज मैंने स्वप्न देखा॥

शव का शिक्षक नर्तन देखा,
देखी पाप पुण्य की रेखा,
राजमहल झोंपड़ियाँ देखीं,
नयनों की हथकड़ियाँ देखीं,
उसी सड़क पर पत्थर देखे,
देखी हँसती राजदुलारी।
मैंने देखा एक भिखारी ॥

फिर विराग ने आकर घेरा,
डाला कर्तव्यों ने डेरा,
मस्तक में संघर्ष छिड़ गया,
झूठे सुख से प्यार चिढ़ गया,
चित्र खिचित सा खड़ा रहा फिर-
चला बहाता आँसू खारी।
मैंने देखा एक भिखारी ॥

स्वप्न

आज मैंने स्वप्न देखा ।

चिता की चिनगारियों में,
तड़पते अरमान देखे ।
लाश पर मनती दिवाली,
और गीले गान देखे ॥
दग्ध मानस, दग्ध दुनिया,
राख देखी, शूल देखे ।
जो हुए बलिदान उनकी—
अर्थियों पर फूल देखे ।

हड्डियों का चयन देखा ।
आज मैंने स्वप्न देखा ॥

आज जो बन्दी, उन्हीं का,
विश्व पर अधिकार देखा ।
झूमते झण्डे तिरङ्गे,
देश का दरबार देखा ॥
आँख जब प्रातः खुलीं तो,
फिर पुराना वेश देखा,
जेल में बन्दी पड़ा था—
और ढूला शेष देखा ॥

दानवों का दमन देखा,
आज मैंने स्वप्न देखा ॥

पुजारी

मेरा घर मन्दिर और पुजारी मैं हूँ।
दृग झरनों से झरता जल खारी मैं हूँ॥

जब क्लेश-कृशानु बुझा शीतल रस-सम में,
तब जागरूक हो झाँका अन्तरतम में,
देखे सुर सकल और भगवान वहाँ पर,
तब पहिचाना मैंने, मन्दिर मेरा घर।

वे देव और अति अत्याचारी मैं हूँ।
मेरा घर मन्दिर और पुजारी मैं हूँ॥

पुजारी

माँ शक्ति उमा का रूप अनूप वहाँ हैं,
अग्रज हैं 'राम', पिता 'शिव' रूप वहाँ हैं,
'लक्ष्मण' प्रिय अनुज साथ अग्रज के रहते,
पग-पद्म-पराग प्यार-रस में सन बहते,

तन-सर्प और विषभरी पिटारी मैं हूँ।
मेरा घर मन्दिर और पुजारी मैं हूँ॥

वे स्नेह और मैं चिर वियोग सहता हूँ।
बन्दीगृह में उनकी जय जय कहता हूँ॥
पीता प्रकाश—रस मन आकुल रहता है।
सब रस आँखों से टप टप टप बहता है॥

मैं हूँ निराश पर प्रेम-भिखारी मैं हूँ।
मेरा घर मन्दिर और पुजारी मैं हूँ॥

बन्दीगृह नन्दीग्राम, अयोध्या भारत,
'माँडवी' अलग पत्नी रहती पति में रत।
प्रिय प्रेम-पुजारिन पूजा करती मेरी,
पर रानी! आज किसे चिन्ता है तेरी॥

करदो तुम भी बलिदान भिखारी मैं हूँ।
मेरा घर मन्दिर और पुजारी मैं हूँ॥

आज पिला

मेरी प्यास बुझा मधुबाले !
बुझ न सकी सागर-जल से ।
प्यास बुझाती तू दुनिया की,
अपने इस गागर-जल से ॥

ओक बना लूँ डालो मदिरा–
आया मैं पीने वाला ।
अरी दिये जा, अरी दिये जा,
आज तोड़ना है ताला ॥

आज पिला

कोई घर में जाकर देखो–
पड़ी हुईं कितनी लाशें।
कफ़न तलक को पास न पैसा,
चलतीं करवट पर श्वासें॥

चार पाँच अर्थी निकलेंगी–
एक साथ मेरे घर से।
'राम नाम है सत्य' यही बस–
गूँजेगा ऊँचे स्वर से॥

मुण्डमालिनी! खाण्डा दे दे,
दे दे मुण्डों की माला।
महाक्रान्ति का, महाक्रान्ति का-
आज पिलाये जा प्याला॥

जिस दिन आऊँ विजय प्राप्त कर-
पूजूँ तेरी मधुशाला।
पान फूल नैवेद्य चढ़ाऊँ,
मोती मणियों की माला॥

आज झिझकता लुकता छिपता,
आता है पीने वाला।
मन्दिर मस्जिद बन जायेगी,
कल यह तेरी मधुशाला॥

विदा

मन में बस कर, भूल न जाना,
प्रेम-पगा यह च्णिक-मिलन।

उषा काल के तारे से आ,
जाते हो दे प्रेम-प्रसाद।
अलग हो रहे, तोड़ रहे मन,
विधवा सी तड़पेगी याद।
नयन बनेंगे सावन भादो,
डसा करेगा क्रूर विषाद।
आँसू बन कर चले जा रहे,
देकर विष सा सुन्दर स्वाद॥

जाते तो हो; पर रोता है,
ठहर ठहर कर मेरा मन।
मन में बस कर, भूल न जाना,
प्रेम-पगा यह च्णिक मिलन॥

विदा

मानस में नयनों के ताले,
पैरों में ज़ञ्जीर पड़ी।
सिसक सिसक कर आँखें रोतीं,
टूट रही दृढ़ हृदय-कड़ी॥
पैर बढ़ाते, आओ बैठो,
रुका खड़ा मेरा मन-रथ।
नयन घुमाते जब नयनों से,
दीख न पड़ता मुझको पथ॥

आँख बदलतीं आँखें मुझ से,
मुरझा जाते खिले नयन।
मन में बस कर, भूल न जाना,
प्रेम-पगा यह क्षणिक-मिलन॥

यह क्या इन भोले नयनों से,
झर झर झर झरते झरने।
क्या आये हैं कहो प्राण ! हम–
दुनिया में आँखें भरने॥
तन से प्राण अलग होते हैं,
दूर चली जल से मछली।
सूर्य जल रहा, कमल खिल रहा,
'मित्र' चला, गिर गई कली॥

जन्म जन्म में देह मिले पर–
तुम जीवन हो, तुम हो मन।
मन में बस कर, भूल न जाना,
प्रेम-पगा यह क्षणिक मिलन॥

बन्दी

तुम न बिछुड़ते, बिछुड़ रहा है—
मुझसे मेरा प्राण-समीर।
पैर उठाते जब चलने को—
लगता सहसा आकर तीर॥
हँसते रहते, रह सकते यदि—
कारा में भी हम तुम साथ।
पर सुख-स्वप्ने देख न सकते—
बँधे हुए जब तक ये हाथ॥

जब होगा स्वाधीन देश तब—
नृत्य करेंगे टूटे मन।
मन में बस कर, भूल न जाना,
प्रेम-पगा यह क्षणिक मिलन॥

माँ और बालक

(बालक) माँ ! पड़ी पड़ी क्यों लोती ?
(माँ) सो 'फुन्नी' ! अभी न सोती ।
(बालक) नहीं सोउँगा बिना चुने ।
(माँ) कभी न लूँगी चने भुने ।
(बालक) मैं भी लोऊँ ऊँ, ऊँ, ऊँ,
(माँ) चिड़िया आई चूँ चूँ चूँ,
(बालक) बतलादे क्यों लोती थी ?
(माँ) पगले ! मैं तो सोती थी,
(बालक) मँा ! तू क्यों बहकाती है ?
(मँा) माँ तो तुझे सुलाती है,
(बालक) तेरी आँखों में पानी,
(मँा) सो, सुनकर एक कहानी—

बन्दी

किसी पेड़ पर एक चिड़ा-
नीड़ बसा कर रहता था। (बालक— हूँ)
अपनी नन्ही चिड़िया से-
प्रेम-कहानी कहता था। (बालक— हूँ)

चिड़ा एक दिन छोड़ उसे,
चुग्गा चुगने चला गया। (बालक— हूँ)
एक पेड़ के नीचे तब,
किसी व्याध से छला गया ॥ (बालक— हूँ)

तरु पर बैठी चिड़िया को,
चिड़ा देखता था रह रह। (बालक— हूँ)
टपक रहे थे चिड़िया की,
आँखों से आँसू बह बह ॥ (बालक— हूँ)

भूखी वह, भूखे बच्चे,
पक्षी पिँजरे में डाला। (बालक— हूँ)
फिर फाँसी पर लटका कर,
लगा दिया उसमें ताला ॥ (बालक— हूँ)

चिड़िया उड़ उड़ कर जाती,
पड़ा हुआ था जाल जहाँ। (बालक— हूँ)
नीर बहा कर उड़ जाती,
देख चिड़े का हाल वहाँ ॥ (बालक— हूँ)

माँ और बालक

कटे हुए थे पर उसके,
तड़प रहा था रह रह कर। (बालक— हूँ)
कहते कहते आँखों से,
टपक पड़े आँसू बह कर॥

(बा०) कहती कहती क्यों लोती ?
माँ! आगे सुना कहानी।
(माँ) पता नहीं कब आयेगा,
'फुन्नी'! उसके पास चिड़ा।
(बा०) चिड़ा छुड़ा कर लाता हूँ,
मार व्याध को माँ! मत रो।
(माँ) कैसे जाने दूँ तुझको,
बड़ा भयानक है हाऊ।
(बा०) उसको मार गिरा दूँगा,
ले माँ मैं डंदा लाऊँ।

याद

रह रह याद बहुत आती है।
श्वास श्वास में हिचकी है वह, चाँद रात में बन जाती है॥

विरहानल से मुझे जलाती,
बनकर अनिल अनल धधकाती,
प्यासे नयनों को तरसाती,
जीवन वाली विष बरसाती,

बार बार उसकी भोली सी, सूरत मुझे रुला जाती है।
रह रह याद बहुत आती है॥

याद

उषाकाल की स्वर्णिल लाली,
नाना व्यंजन मदिरा प्याली,
प्यार भरी फूलों की डाली,
लूट लूट रस हँसता माली।

उजड़ गई भौंरे की दुनिया, दुनिया उसको कब भाती है।
रह रह याद बहुत आती है॥

चकवे चकवी के विहार में,
यमुना तट के मधुर प्यार में,
मौन निशा की नीरवता में,
प्रेम-मिलन की आकुलता में,

बहुत रोकता हूँ पर फिर भी, आँसू-सरिता बह जाती है।
रह रह याद बहुत आती है॥

मुझे रिझाने वाली भोली,
आज न मुझ से हँस कर बोली,
लोगो ! करो न व्यर्थ ठिठोली,
जलती आशाओं की होली,

यौवन क्रीड़ा, कोयल की ध्वनि, नमक जले पर छिटकाती है।
रह रह याद बहुत आती है॥

जब और अब

वह वर्ष हवा हो गया तभी, अब क्षण रो रो कर कटता है।
वे दिन पल भर में चले गये, अब सर्प रात दिन डसता है।

वह हास्य न जाने किधर गया,
जब साथ रहे थे हम दोनों।
छत पर शुभ शुभ्र चाँदनी में—
जब खेले थे छुम छुम दोनों॥
तब अटल प्रेम से एक हुए,
अब एक अकेला रोता है।
बीती बातों पर आँखों से,
अपने अरमान पिरोता है॥

अम्बर में काले काले घन, शूलों पर भ्रमर भटकता है।
वह वर्ष हवा हो गया तभी, अब क्षण रो रो कर कटता है॥

अब निमिष नहीं काटे कटता,
वह वर्ष न जाने किधर गया,
मेरा वह सुधा भरा प्याला,
ठोकर लगते ही बिखर गया।
तब से ये आँसू बिखर रहे,
कोरे कागज़ के पृष्ठों पर।
जिन पृष्ठों से बस रही सृष्टि,
पर भटक रहा स्रष्टा दर दर॥

जब प्यास बढ़ा ली पी पी कर, अब प्यासा पथिक तरसता है।
वह वर्ष हवा हो गया तभी, अब क्षण रो रो कर कटता है॥

मातृत्व

माँ ! याद तुम्हारी आती, आँसू आते ।
माँ रोती रहती रो रो कर कह जाते ॥

माँ ! प्यारा प्यारा प्यार मुझे देती हो,
तुम अपना सब संसार मुझे देती हो,
माँ ! कामधेनु, माँ ! 'राम' और रचना हो,
माँ ! गङ्गा, यमुना, कल्पवृक्ष, रसना हो,

यह बन्दी को बह बह आँसू बतलाते ।
माँ ! याद तुम्हारी आती, आँसू आते ॥

माँ की मीठी वाणी से सुधा बरसता,
बन्दीगृह में पीने को हृदय तरसता,
मातृत्व बिना माँ ! राजमहल में दुख है,
माँ ! साथ तुम्हारे झोंपड़ियों में सुख है,

माँ के दर्शन को तृषित नेत्र ललचाते ।
माँ ! याद तुम्हारी आती, आँसू आते ॥

मेरा सन्देश जानने पक्षी आते,
सन्ध्या वेला में उड़ उड़कर घर जाते,
मैंने उनसे पूछा सन्देश तुम्हारा,
वे उड़ जाते हैं, बहा अश्रु की धारा,

आँखों से झरने झर झर मुझे रुलाते ।
माँ ! याद तुम्हारी आती, आँसू आते ॥

लक्ष्यहीन

रो रहा घास पर बैठा पथिक बिचारा।
चू रहा लहू हृद में जलता अङ्गारा॥

यह देख रहा है प्रेम-परीक्षालय को-
या देख रहा है प्रभु के न्यायालय को,
या निर्निमेष कुछ घन में देख रहा है,
या चित्र किसी का मन में देख रहा है।

क्या खेल खेल में धधक उठा अङ्गारा?
रो रहा घास पर बैठा पथिक बिचारा॥

लक्ष्यहीन

जल रहा न जाने किस ज्वाला में पागल,
आ रहा हाय हृद इसका भरभर पलपल,
मैं बोल रहा पर ध्यान न कुछ भी इसको,
पागल सा जाने देख रहा है किसको।

छिप गया कहाँ इसकी आँखों का तारा?
रो रहा घास पर बैठा पथिक बिचारा॥

तुम कौन? कहाँ रहते? कुछ तो बतलाओ,
क्यों मुझे सताते, जाओ, भैया! जाओ;
दो दिन रहना है, दुनिया में रहने दो,
पूछो न हाल, ठोकरें मुझे सहने दो।

तुम भी दुतकारो हाय! न कहो दुलारा।
रो रहा घास पर बैठा पथिक बिचारा॥

थक गया विश्व से कह कह करुण कहानी,
रह गई शेष अब अपनी राख बिछानी,
बस इस नगरी में आज मुझे रहना है,
अलि बन्द, कमल से और न कुछ कहना है।

क्यों मृत्यु समय आकर तुमने पुचकारा।
रो रहा घास पर बैठा पथिक बिचारा॥

सन्ध्या

सन्ध्या रानी आई।

मन्दिर मस्जिद के पट खोले,
शंख बज गये, मुल्ला बोले,
घण्टे बजे, बजीं घड़ियालें,
फूल चढ़े, जल गईं मशालें,
दिन की मंज़िल ढाई।
सन्ध्या रानी आई॥

आई भर भर प्रेम पिलाने,
रूप लुटाने, विश्व रिझाने,
दम्पति बिछुड़े हुए मिलाने,
उजड़े सूने नीड़ बसाने,
दर दर दया बिछाई।
सन्ध्या रानी आई॥

सन्ध्या

पहिने झूमर बुन्दे वाली,
ओढ़े रंग बिरंगी जाली,
आई नर-बन्धन तुड़वाती,
गउओं को बन्दी बनवाती,
रंग रँगीली लाई।
सन्ध्या रानी आई॥

धूप चली अलि! छत से ऊपर,
आये सब बालक पढ़ पढ़कर,
पक्षी उड़ने लगे भीड़ में,
चुग चुग चुग्गा चले नीड़ में,
छैल छबीली छाई।
सन्ध्या रानी आई॥

निमटा चौका बर्तन कब का,
ग्वाला दूध दुह गया सब का,
गउएं आईं, सूर्य गये घर,
कहाँ रहे मेरे स्वामी पर—
इतनी देर लगाई।
सन्ध्या रानी आई॥

अलि! ये दोनों समय मिल गये,
चन्दा निकला, कुमुद खिल गये,
जलीं लालटेनें सड़कों पर,
'रमजू' आया चाट बेचकर,
सब ने रोटी खाई।
सन्ध्या रानी आई॥

आई साथ न उनको लाई,
कहदे कहाँ छोड़कर आई,
जाने क्यों वे कहाँ रुक गये ?
वृक्ष सो गये, फूल झुक गये,
सब ने खाट बिछाई ।
सन्ध्या रानी आई ॥

उनके साथी दौड़े आये,
कुछ रोते से, कुछ घबड़ाये,
बोल उठे वे हिचकी भर भर,
पुलिस ले गई उन्हें पकड़ कर,
हृद् में आग लगाई ।
सन्ध्या रानी आई ॥

मैं बोली तुम क्यों रोते हो ?
क्यों आँखों से व्रण धोते हो ?
गौरव मुझे, तुम्हें गौरव है,
जो रोता वह जीवित शव है,
रोकर लाज दिखाई ।
सन्ध्या रानी आई ॥

निद्रा निमन्त्रण

सोजा पड़कर राही ! सोजा, सोता सब संसार ।

तरुओं के पल्लव नीरव हैं,
मूक पक्षियों के कलरव हैं,
इस नीरव निशि में पग तेरे, जाते किसके द्वार ।
सोजा पड़कर राही ! सोजा, सोता सब संसार ॥

कण कण में नीरवता छाई,
हाय ! तुझे क्यों नींद न आई ?
बता मिला है कब इस जग में, मन चाहा अधिकार ।
सोजा पड़कर राही ! सोजा, सोता सब संसार ॥

जग सोता है लम्बी ताने,
पीड़ा भरे सुना मत गाने,
कौन सुनेगा इस रजनी में, टीस भरे उद्गार ।
सोजा पड़कर राही ! सोजा, सोता सब संसार ॥

भन भन करतीं सड़कें सारी,
घिरी हुई डायन अँधियारी,
सुलझाता है बैठ अकेला, किस उलझन के तार ।
सोजा पड़कर राही ! सोजा, सोता सब संसार ॥

प्राणाधार !

रो रो कर पागल मत होना, पगली रही पुकार ।

मेरा मन प्रियतम के मन में,
लगी हुई है आग बदन में,
पर मैं हूँ परतन्त्र इसी से, रहती मन को मार ।
रो रो कर पागल मत होना, पगली रही पुकार ॥

मैं हूँ प्यार और तुम मेरे,
जग का बन्धन मुझको घेरे,
यमुना की सौगन्ध खा रही, प्रियतम प्राणाधार ।
रो रो कर पागल मत होना, पगली रही पुकार ॥

चिता दहकती मेरे उर में,
तुम बैठे हो अन्तःपुर में,
चले न जाना मुझे छोड़कर, सागर में मझधार ।
रो रो कर पागल मत होना, पगली रही पुकार ॥

जर्जर नौका पड़ी भँवर में,
माँझी ! हाथ तुम्हारे कर में,
अलग न होना इसे छोड़कर, तोड़ फोड़ पतवार ।
रो रो कर पागल मत होना, पगली रही पुकार ॥

परिचय

मेरा परिचय, मैं क्षणभङ्गुर,
क्षण क्षण में रङ्ग बदलता हूँ।
जिस पथ पर काँटे ही काँटे,
उस पथ पर प्रतिपल चलता हूँ॥
मैं सुधा समझ, विष के प्याले,
भर भर कर पीता रहता हूँ।
इस इन्द्रजाल में फँसा हुआ,
झूठे सुख को सुख कहता हूँ॥

मैं चेतन के रहते जड़ हूँ,
छल दम्भ कुकर्मों का स्वामी।
मैं रिसता–घट, मैं बुल्ला हूँ,
मैं हूँ 'महेश' मैं हूँ कामी॥
मैं पञ्च तत्त्व का पुतला हूँ,
जग में 'मानव' कहलाता हूँ।
मैं उषाकाल का तारा हूँ,
नित खेल खेलने आता हूँ॥

मैं हूँ 'कुबेर', मैं निर्धन हूँ,
मस्तिष्क भरा, झोली खाली।
मस्तक में जो उपजा करता,
मेरे गुरु हैं उसके माली॥
अपनी निधि दोनों हाथों से,
मैं भर भर खूब लुटाता हूँ।
मैं मस्त कल्पना में रहता,
सुख दुख में गीत सुनाता हूँ॥

जो मैं हूँ, तू है, सारा जग,
दुनिया में मित्र सभी मेरे।
भगवान प्रेम से मिले नहीं,
दर दर पर डाल दिये डेरे॥
मैं हार गया चलते चलते,
पर उस मंज़िल तक जा न सका।
खोने को तो खो दिया रत्न,
पर खोकर फिर मैं पा न सका॥

अब छुई मुई का तरु जग में,
कब गिर जाऊँ निश्चय क्या है?
कल काल मुझे आ छू देगा,
मेरा जग में परिचय क्या है?
मैं सूर्य सदृश निकला करता,
पर सन्ध्या में ढलना होगा।
मैं अहङ्कार में भूल रहा,
कल मरघट में जलना होगा॥

विच्छेद-पत्र

अर्थियाँ दो की चलेंगी,
पत्र क्या ? यह कफ़न आया ।

क्या इसी में हर्ष जग को,
दो जले दीपक बुझाये ?
क्या यही है न्याय जग का,
मार्ग में काँटे बिछाये ?
अग्नि यह उसके हृदय की,
निज हृदय में साथ लाया ।
आग है सच्चे हृदय की ।
इस लिये तू जल न पाया ।।

कर दिया बीमार दिक़ का—
घाव पर चाकू चलाया ।
अर्थियाँ दो की चलेंगी,
पत्र क्या ? यह कफ़न आया ।।

उधर वह जलती बिचारी,
मौत मेरी साथ लाया।
वह उधर रोती तड़पती,
इधर तू अङ्गार आया॥
प्यार के बदले रुदन ही,
ज़िन्दगी का मोल लाया।
अब नहीं हम मिल सकेंगे,
ज़हर से दो बोल लाया॥

तीर तूने तान छोड़ा,
तोड़ता दो सुमन आया।
अर्थियाँ दो की चलेंगी,
पत्र क्या? यह कफ़न आया॥

अलग हैं जब हम जगत से,
क्या रहा जग में हमारा।
दो धधकती चिता तट पर,
देख लेगा विश्व सारा॥
स्नेह है सच्चा हमारा,
चिता के शोले कहेंगे।
राख के दो ढेर जग को –
देख कर हँसते रहेंगे।

अक्षरों में आग ही बस,
प्रेम का परिणाम लाया।
अर्थियाँ दो की चलेंगी,
पत्र क्या? यह कफ़न आया॥

यमुना-तट पर

ये कौन युगल बन्दी बैठे,
कल कल करते निर्मल तट पर ?

पी रहे प्रेम-रस हाथ पकड़,
पैड़ी पर बैठे जी भर भर।
हो रहे एक, खा रहे शपथ,
यमुना-जल कर में ले ले कर।
तुम उधर और हम इधर न हों,
कह रहे कौन आँखें भर भर ?

ये कौन युगल बन्दी बैठे,
कल कल करते निर्मल तट पर ?

यह प्रेम सत्य सा अटल रहे,
चाहे सारा जग चले रूठ।
जो अलग हुए, हो जायेंगे—
माँ! मन के टुकड़े टूट टूट।
सौगन्ध खा रहे शुद्ध प्रेम,
माँ! सदा रहे शुचि अचल अमर।

ये कौन युगल बन्दी बैठे,
कल कल करते निर्मल तट पर?

जैसे ये लहरें लहरातीं,
वैसे ही स्नेह-हिलोर उठें।
शैलों पर चढ़ चढ़ कर बरसें,
अङ्गार बुझें, मन-मोर उठें॥
हम दोनों प्रेमी रस पी-पी,
रस-धार बहायें गा गा कर।

ये कौन युगल बन्दी बैठे,
कल कल करते निर्मल तट पर?

कालिन्दी का श्यामल जल छू,
ये कौन स्नेह-घट भरते हैं?
क्या कृष्ण राधिका फिर तट पर,
यह प्रेम-प्रतिज्ञा करते हैं?
पर निभ न सकेगा प्रेम सदा—
जो शपथ खा रहे जल छूकर।

ये कौन युगल बन्दी बैठे,
कल कल करते निर्मल तट पर?

अन्धकार

जिस दीपक से पथ दीपित है, जब वह दीपक बुझ जायेगा।
बन्धु लौट कर क्या आयेगा ?

जब जाने पहिचाने पथ पर,
पड़े हुए पायेगा पत्थर,
जब उसका पवित्र रङ्गस्थल,
बन जायेगा खँडहर जंगल,

यमुना के निर्मल तट पर जब, चिता धधकती ही पायेगा।
जिस दीपक से पथ दीपित है, जब वह दीपक बुझ जायेगा ॥
बन्धु लौट कर क्या आयेगा ?

बन्दी

जब मसान बन जायेगा घर,
जब न मिलेगा प्रेम वहाँ पर,
जब जलते होंगे अङ्गारे,
जब मिलते होंगे दुतकारे,

जब सूरज की विदा-व्यथा से, नीरज ही मुरझा जायेगा।
जिस दीपक से पथ दीपित है, जब वह दीपक बुझ जायेगा॥
बन्धु लौट कर क्या आयेगा?

जब अपने ही स्वप्न बनेंगे,
जब पग पग पर ज़हर छनेंगे,
किससे अपनी व्यथा कहेगा,
जग में किसके पास रहेगा,

जब फूलों के समारोह में, बिछे हुए काँटे पायेगा।
जिस दीपक से पथ दीपित है, जब वह दीपक बुझ जायेगा॥
बन्धु लौट कर क्या आयेगा?

तड़प तड़प कर जल जायेगा,
जल कर गीत वहाँ गायेगा,
जहाँ न कोई अलग करेगा,
जहाँ न कोई कभी मरेगा।

जली हड्डियाँ ढेर राख का, जग यमुना तट पर पायेगा।
जिस दीपक से पथ दीपित है, जब वह दीपक बुझ जायेगा॥
बन्धु लौट कर क्या आयेगा?

परिवर्त्तन

तोड़ दो उठ शृङ्खलायें, आज परिवर्त्तन बुलाता।
पेट के कुत्ते न बनकर, स्वयम् बन जाओ विधाता ॥

कौन कारा में पड़ी वह ?
कौन यह आँसू बहाती ?
कौन भूखे मर रहे वे ?
कौन रणभेरी बजाती ?
कौन राखी हाथ में ले—
माँगती बलिदान तुमसे।
कौन भिखमंगी खड़ी यह—
माँगती अभिमान तुमसे ?

कौन है जो राजपूती-आन वह फिर से जगाता ?
तोड़ दो उठ शृंखलायें, आज परिवर्त्तन बुलाता ॥

बन्दी

आज पतझड़, आज पशुता,
आज बच्चे छटपटाते।
क्यों बसन्ती रंग छाया ?
क्यों रँगीले गीत गाते ?
नाचते क्यों बावले बन,
कोकला की काकली पर ?
फूकते अपनी जवानी,
क्यों किसी कोमल कली पर ?

पहिन केसरिया बढ़ो कवि ! शंख बजता, रक्त गाता।
तोड़ दो उठ श्रृंखलायें, आज परिवर्त्तन बुलाता ॥

मित्र ! मतवाले मिलिन्दो !
यह करुण गुंजार क्यों है ?
पक्षियों की 'टींव, टी, वी,
टी' टसक टंकार क्यों है ?
आज जाने हरिणियों की,
सिंहनी-हुङ्कार क्यों है ?
आज जाने प्रकृति—पीड़ा,
कर रही श्रृंगार क्यों है ?

पूछ मुँह की कालिमा नर ! क्यों नहीं रोली लगाता ?
तोड़ दो उठ श्रृंखलायें, आज परिवर्त्तन बुलाता ॥

हाय !

प्रेम कहाँ है? हथकड़ियाँ हैं,
अङ्गारों पर चलना है।
तड़प तड़प कर, सिसक सिसक कर,
हाय हाय! कर जलना है॥

बन्दी

"सर से सौदा" किया प्रेम का,
मिला नहीं मुझको जग में।
कपट द्वेष सन्देह भरा है,
पापी जग की रग रग में॥

मैंने हृदय चीर दिखलाया,
हुआ नहीं विश्वास उन्हें।
क्या हँसते खिलते जीवन का,
करना ही था नाश उन्हें ?

श्वास श्वास में हाय, हाय ! में,
जलता यह जीवन देखो।
मेरी आँखों में, सागर हैं,
या सावन के घन, देखो।

मैंने पावन प्रेम किया था,
फिर भी कहा मुझे पापी।
तेरी पाप-मनीषा तुझको,
शाप न दे दे अभिशापी !!

पापी वह है, जो अपना कह,
फिर ठोकर से ठुकराये।
पापी वह है, गंगा-जल को,
जो विषधारा बतलाये॥

हाय !

पापी वह है हृदय देख कर-
भी जिसको विश्वास नहीं।
पापी वह है हृदय और दो-
आँसू जिसके पास नहीं ॥

एक बार ही इस जीवन में,
भिक्षा माँगी मिली नहीं।
पत्ती पत्ती नोच फेंक दी,
मन की कलिका खिली नहीं ॥

बज्र-हृदय को हिला न पाया,
मेरी आँखों का पानी।
उसने निर्दोषी पर अपनी—
तीखी तलवारें तानी ॥

मैंने भी सर झुका दिया था,
कहा 'काट दे मेरा सर।
मैं तो मौतों से खेला हूँ,
मुझको कब मरने का डर ॥'

यह सब है पर मेरा अन्तर,
अन्यायों से जलता है।
सान्ध्य-सूर्य सा जीवन ढल ढल,
ढलते ढलते ढलता है ॥

बन्दी

क्या सरिता-तट पर जाकर भी,
तृषित पिपासा ही आता ?
क्या जीवन भर जलते जलते,
जीवन जल जल जल जाता ?

प्यार हार है जहाँ लाश को,
नोच नोच दुनिया खाती।
शव के बिखरे छिछड़ों पर फिर,
महल बना कर मुसकाती ॥

उलझन

मैं दुनिया से ऊब गया या—
ऊब गई दुनिया मुझ से।
ओ रे आकुल अन्तर बतला,
पूछ रहा कब से तुझ से॥

बन्दी

निद्रा आती नहीं रात में,
दिन में दिनकर सा तपता।
जलता जलता जीवन जलता,
जलता जलता तन जलता॥

एक सहारा था उसका भी,
हाय! हाय! अधिकार लुटा।
छाले फूटे, जीवन रूठा,
झूठे जग का प्यार छुटा॥

पग पग पर दुतकारे खाये,
यही प्यार का प्यार मिला।
हृदय दिया जिसके बदले में,
खारी पारावार मिला॥

फोड़ फफोले अन्तरतम के,
नमक छिड़क देता कोई।
मुझे देख कर दुनिया हँस दी,
मुझे देख दुनिया रोई॥

आँखें भूखी भटक रही हैं,
अधर पिपासे तरस रहे।
मेरे ऊपर आज किसी के-
मुँह से शोले बरस रहे॥

उलझन

मैं ठुकराया हुआ पथिक हूँ।
ठोकर खा खा कर चलता।
मैं जीवित भी मरा हुआ हूँ।
लाश सड़ रही पथ जलता॥

जग से जले हुए मानव के—
मानस की धक धक देखो।
और स्नेह से उसके जलते—
महलों में दीपक देखो॥

अधरों पर मुसकान, हृदय के—
छाले किसको दिखलाऊँ?
कटे हुए पर, नीड़ नहीं है।
बीहड़ पथ में क्या गाऊँ?

मेरे गीतों में क्रन्दन है,
स्वर में सुलग रही ज्वाला।
श्वास श्वास में चिनगारी है।
पीता आहों का प्याला॥

आँखों में लोहू अन्तर में—
'शिव' का ताण्डव नृत्य छिड़ा।
मैं अत्याचारों से जलता—
मुझसे यह संसार चिढ़ा॥

मृत्युदण्ड

निर्दोषी को फाँसी देकर,
बता तुझे क्या मिल जायेगा!
रक्त देख धरणी दहलेगी,
तेरा शासन हिल जायेगा॥

और बता उसका क्या होगा ?
फिरे हुए हैं जिससे फेरे।
जिसके हाथों में महँदी है,
जिसके प्राण प्राण हैं मेरे ॥

जिसकी माँ ने एक मास की,
बिटिया हाय ! बिलखती छोड़ी।
वह एकाकी तड़प रही है,
जिससे मैंने ग्रन्थी जोड़ी ॥

मिली नहीं बचपन में जिसको,
माँ के मधुर अंक की लोरी।
दानव ! उसके लिये बता क्यों,
टाँकी यह फाँसी की डोरी ?

यही बहुत था रुग्ण हुई जब,
मिला नहीं पानी दो माशे।
यही बहुत है तरसा तरसा,
चलवादीं करवट पर श्वासें ॥

यही बहुत है मुझे पकड़ कर,
रुला रहा है बेचारी को।
यही बहुत है भीख माँगती,
वह दुखियारी लाचारी को ॥

अब सुहाग भी जला रहा तू,
हम दोनों ने दुनिया छोड़ी।
ओ जल्लाद! रहम कर हम पर,
तोड़ न सारस की सी जोड़ी॥

हम दोनों को बन्दी करले,
दोनों कारा में रहलेंगे।
काल कोठरी के कोने में,
अपने दुख सुख की कहलेंगे॥

एक दूसरे के मुख का मधु–
पी पी कर वर्षों जी लेंगे।
और आँसुओं के धागों से–
फटे हुए कम्बल सी लेंगे॥

तीखी तान लगा तसले पर–
जब वह मधुर मधुर गायेगी।
दो बन्दी बन्दी न रहेंगे–
दुनिया तभी बदल जायेगी॥

आह

मैंने अन्तर की पीड़ा को, अन्तर में दफ़नाना सीखा ।
मैंने आँखों के पानी में, घुल घुल कर बहजाना सीखा ॥

मैंने अपनी अर्थी देखी ,
अपना शव जलते देखा है ।
मैंने सरोज की दुनिया में–
सूरज को ढलते देखा है ॥
मैंने सुकुमारी सीता को ,
शूलों पर चलते देखा है ।
रवि से खिलते देखे पङ्कज–
पर रवि को जलते देखा है ॥

मैंने हँसते हँसते जलती, ज्वाला में जल जाना सीखा ।
मैंने अन्तर की पीड़ा को, अन्तर में दफ़नाना सीखा ॥

मैंने इस जग के अणु अणु में-
अङ्गार बरसते देखे हैं।
आशाओं की होली देखी,
अरमान तरसते देखे हैं॥
मैंने विष पीकर कण्ठों में-
ये प्राण अटकते देखे हैं।
प्रिय से मिलने की आशा में-
नित नयन भटकते देखे हैं॥

मेरे मानस में टीस चीस, पर मैंने मुसकाना सीखा।
मैंने अन्तर की पीड़ा को, अन्तर में दफ़नाना सीखा॥

यमुना की लहरों में मैंने-
दो प्यार मचलते देखे हैं।
देखे दो टूटे हुए हृदय-
दिन रात बदलते देखे हैं॥
मैं प्रेमामृत पी देख चुका,
मैंने विष पीकर देखा है।
मैंने अपना सब कुछ देकर-
दुनिया में जीकर देखा है॥

आँखों के आँसू पी पीकर; जल जलकर जल जाना सीखा।
मैंने अन्तर की पीड़ा को, अन्तर में दफ़नाना सीखा॥

आह

मरुस्थल यह सारी दुनिया है,
जिसमें मृगतृष्णा ही देखी।
पृथ्वी यह गोल सदा जिसमें—
ज्वाला सी कृष्णा ही देखी॥
काँटों में सुख दुख तोल लिये।
हँसता रोता कण कण देखा।
कोना कोना अणु अणु देखा।
नर नर का नर भक्षण देखा॥

पर मैंने चलना ही सीखा, वापिस न कभी आना सीखा।
मैंने अन्तर की पीड़ा को, अन्तर में दफ़नाना सीखा॥

नर के मस्तक में क्रान्ति देख—
मैंने गिरि पर चढ़कर देखा।
देखा क्षण क्षण में परिवर्त्तन,
पर कहीं न कुछ अन्तर देखा॥
जीवन के साथ साथ जग में—
संघर्षों का चलना देखा।
होते देखे हैं पाप यहाँ—
फिर हाथों का मलना देखा॥

मैंने उलझन में उलझ उलझ, उलझन को सुलझाना सीखा।
मैंने अन्तर की पीड़ा को, अन्तर में दफ़नाना सीखा॥

बन्दी

मैंने पत्थर के साथ साथ,
पिस पिस कर रहना सीखा है।
मैंने अपना कह दिया जिसे,
अपना ही कहना सीखा है ॥
मेरी चोटों को इस जग ने-
भालों से सहलाना सीखा।
छाती पर पत्थर रख रख कर।
मैंने मन बहलाना सीखा ॥

मैंने सागर की लहरों में, घुस, तैर निकल जाना सीखा।
मैंने अन्तर की पीड़ा को, अन्तर में दफ़नाना सीखा ॥

अणु अणु में देखा सर्वनाश,
नर क्लान्त क्रान्ति की रेखा है।
मैंने स्वतन्त्रता का दीपक-
अपने गीतों में देखा है ॥
पर इन गीतों से जग डरता।
मैंने गा गा कर देखा है।
रह रह कर चोटें चीस रहीं।
यह जग मर मर कर देखा है ॥

वाणी पर ताले ठोक ठोक, मैंने न कभी गाना सीखा।
मैंने अन्तर की पीड़ा को अन्तर में दफ़नाना सीखा ॥

आह

मैंने भारत की गलियों में—
अपनी छाती फुकती देखी।
गोरी चमड़ी के चरणों में—
अन्धी दुनिया झुकती देखी॥
मैंने अपनी ही अर्थी पर—
ये कवितायें उगती देखीं।
भावों की भूखी चिड़ियायें—
उर-जंगल में चुगती देखीं॥

मैंने दुःखों की दुनिया में, हँसते हँसते गाना सीखा।
मैंने अन्तर की पीड़ा को, अन्तर में दफ़नाना सीखा॥

दाह

मन-मरघट में आशाओं के– शव जला जला जल जल जलता।
मैं जला वासना प्यार प्यार, पग पग पर चिल्लाता चलता॥

मैंने पानी की लहरों पर–
बुल्लों का महल बनाया था।
वह लहरों से टकरा टूटा,
बह गया रत्न जो पाया था॥
निष्ठुर हत्यारी दुनिया से,
मैं भोला भाला छला गया।
जल जल कर जीवित जलने को,
जलती ज्वाला में चला गया॥

श्वासों में जलती आग लिये, पलकों से पत्थर पर चलता।
मन-मरघट में आशाओं के– शव जला जला जल जल जलता॥

दाह

यमुना-तट पर रवि-किरणों से,
सुन्दर सरोज मुसकाया था।
वह निष्ठुर 'हरि' ने छीन लिया,
लुट गया स्नेह जो पाया था॥

जीने को आहें सटक रहा,
अपने सारे सुख छोड़ दिये।
छोड़ी तूफानों में तरणी,
दुनिया से नाते तोड़ दिये॥

पीने को विष ही मिला मुझे, पग पग पर विष पी पी चलता।
मन-मरघट में आशाओं के–शव जला जला जल जल जलता॥

अपराधी ने, निर्दोषी का–
नित आमिष नोच नोच खाया।
अङ्गारा धरा हथेली पर,
दोषी ने दोषी ठहराया॥

मेरा मानस नन्दन वन था,
निष्ठुर ने मरघट बना दिया।
जलतीं लाशें, रोती श्वासें,
होतीं न हाय! चुप मना लिया॥

रह रह वियोग की वेला में, आँखों से गंगा जल ढलता।
मन-मरघट में आशाओं के– शव जला जला जल जल जलता॥

बन्दी

मैं बहुत रोकता हूँ फिर भी—
क्यों नयनों से वर्षा होती?
क्यों काली कफ़नी लिये हुए—
यह कोई सुकुमारी रोती?
जल चुकी लाश, अब शेष राख,
जिस पर दुनिया वैभव बोती।
मेरी आँखों के आगे ही,
क्यों कविता-कल्याणी रोती??

अभिलाषाओं की लाशों पर, अरमानों की भस्मी मलता।
मन-मरघट में आशाओं के— शव जला जला जल जल जलता॥

टीस

मैं विष के प्याले पी पीकर, मधु-धार बहाया करता हूँ।
जो मुझे जलाया करता है, मैं उसे हँसाया करता हूँ॥

मैं पतझड़ का सूखा पत्ता,
पर सागर में तरणी खेता।
मैं मसला कुचला हुआ फूल,
फिर भी जग को सौरभ देता॥
मैं बन्दी के उर की पीड़ा;
पर माँ के बन्धन काट रहा।
देखो मेरे मन की तरङ्ग,
सीपी से सागर पाट रहा॥

वैभव की दृढ़ चट्टानों को शब्दों से ढाया करता हूँ।
मैं विष के प्याले पी पीकर, मधु-धार बहाया करता हूँ॥

मेरी वाणी का शब्द शब्द,
अरि को अर्थी पर सुला रहा,
मेरी नस नस का गर्म लहू,
खोयी मानवता बुला रहा,
मेरे श्वासों से आग निकल,
फाँसी की डोरी जला रही।
पथ भूले भटके भारत को,
फिर सीधे पथ पर चला रही॥

फाँसी पर चढ़ने वालों की, मैं याद दिलाया करता हूँ।
मैं विष के प्याले पी पीकर, मधु-धार बहाया करता हूँ॥

मंज़िल

युग आ आ कर चले गये पर, तू मंज़िल तक पहुँच न पाया।
भूल गया पथ, पथिक! लौट चल, क्यों चट्टानों पर चढ़ आया?

बीहड़ जंगल, आग बरसती,
कड़ी धूप में जला जा रहा।
तेरी मंज़िल दहक रही है,
तप्त स्नेह में तला जा रहा॥
बटिया छूटी, घोर अँधेरा—
फिर भी आगे बढ़ा जा रहा।
पगडण्डी का पता नहीं कुछ,
अङ्गारों पर चढ़ा जा रहा॥

टूटे खँडहर पड़े, अर्थियाँ उठीं, देख फिर मरघट आया।
युग आ आकर चले गये पर तू मज़िल तक पहुँच न पाया॥

मंज़िल

पागल ! कुछ तो बोल अरे अब–
कितनी दूर और चलना है ?
पाँव थक गये, प्यास जलाती–
झुलस रहा, कब तक जलना है ?

पग पग पर दलदल दलने को,
नाता जोड़ लिया किस पथ से ।
कितनों की हड्डियाँ पड़ी हैं,
कितने लौट गये इस पथ से ॥

तेरा हाल देख कर मेरी– आँखों में पानी भर आया ।
युग आ आ कर चले गये पर, तू मंज़िल तक पहुँच न पाया ॥

अरे, कौन कायर ! कानों में–
कहता लौट पथिक ! इस पथ से ।
जिस पथ पार प्रकाश प्रज्वलित,
जीवन-पथ दीपित जिस पथ से ॥

जो पथ के रोड़ों से डरता–
उससे मंज़िल दूर भगी है ।
उसे कौन कब जला सका है ?
जिसकी उससे लगन लगी है ॥

देख सामने लक्ष्य बावले ! मेरे पाँव चूमने आया ।
युग आ आ कर चले गये पर, तू मंज़िल तक पहुँच न पाया ॥

बन्दी

कुत्ते भौंक रहे कानों में,
बाधाओं से मैं न डरूँगा।
गिरि, सागर, तूफ़ान, आग को,
आह उगल कर भस्म करूँगा॥
लाख हवायें चलें किन्तु मैं,
जलता जलता बुझ न सकूँगा।
रोक रहा क्यों मुझे बावले!
मैं रोके से रुक न सकूँगा॥

अरे! वही यौवन यौवन है, जो फाँसी पर भी मुसकाया।
युग आ आ कर चले गये पर, तू मंज़िल तक पहुँच न पाया॥

मेरी मंज़िल वहाँ जहाँ पर–
दुर्द्धर ज्वाला दहक रही है।
मेरी मंज़िल वहाँ जहाँ पर–
क्रान्ति क्रान्ति ही चहक रही है॥
मेरी मंज़िल वहाँ ज़हाँ पर–
अरमानों की ख़ाक पड़ी है।
मेरी मंज़िल वहाँ जहाँ पर–
बिना कफ़न के लाश पड़ी है॥

मंज़िल मंज़िल चलता हूँ पर, चक्कर काट वहीं पर आया।
युग आ आ कर चले गये पर, तू मंज़िल तक पहुँच न पाया॥

क्रन्दन

धर दिया चिता में जीवित को, भर दिया दृगों में जल खारा।
कवि की अर्थी पर महल बना, हँसता है यह जग हत्यारा॥

मैं रोया, मेरे रोने को,
तुम कविता कह कर फूल गये।
मेरे मानस की चोटों को,
मेरे गीतों में भूल गये॥
अन्तर से आहें निकल रहीं,
चोटों पर चोटें ही फलतीं।
उर के घावों में छाले हैं,
छालों पर भी छुरियाँ चलतीं॥

मैं होड़ लगा कर जीत गया, पर जीत जीत कर भी हारा।
धर दिया चिता में जीवित को, भर दिया दृगों में जल खारा॥

बन्दी

दुनियावालों ! यह दग्ध-हृदय ,
कविता या झूठे गीत नहीं ।
मैं जीत जीत कर भी हारा ,
मेरे जीवन में जीत नहीं ॥

मैं भिखमङ्गा सा फिरता हूँ ,
निज राज ताज जग को देकर ।
ये गीत हृदय से फूट पड़े ,
घावों की पीड़ा ले ले कर ॥

मेरी आँखों से दूर किया, मेरी इन आँखों का तारा ।
धर दिया चिता में जीवित को, भर दिया दृगों में जल खारा ॥

कवि के शोणित से प्यास बुझा,
जग को क्रीड़ा करते देखा ।
कवि के धन से धनवान विश्व ,
कवि को भूखा मरते देखा ॥

यदि हृदय देखना है कवि का—
तो उसके मानस में झाँको ।
यदि मूल्य आँकना है कवि का ,
तो उसकी कविता से आँको ॥

क्या कभी किसी ने देखा है, कवि के अन्तर का अङ्गारा ?
धर दिया चिता में जीवित को, भर दिया दृगों में जल खारा ॥

क्रन्दन

मुझको भी भूख सताती है,
पर पेट पकड़ कर रह जाता।
सूखे हैं ओठ पिपासा से,
फिर भी कवितायें कह जाता॥
मेरी भी इच्छायें होतीं,
पर मन मसोस कर मर जाता।
जग में मणियों की खेती कर,
धनवानों के घर भर जाता॥

धनिकों! लज्जा से डूब मरो, कवि की आहों ने धिक्कारा।
धर दिया चिता में जीवित को, भर दिया दृगों में जल खारा॥

जीते जी विश्व जलाता है,
मरने पर याद किया करता।
क्यों कवि के कन्धों पर कण कण,
आशायें लाद दिया करता॥
क्या कभी किसी ने जीवित की—
अर्थी भी गड़ते देखी है?
क्या बिना कफ़न के लाश कभी,
दुनिया में सड़ते देखी है?

यह कवि का शव, खा रहा जिसे, जग नोच नोच कर हत्यारा।
धर दिया चिता में जीवित को, भर दिया दृगों में जल खारा॥

बन्दी

जो भभक उठा कवि का अन्तर,
तो अरमानों से आह उठे।
ब्रह्माण्ड हिलें, तारे टूटें,
भूचाल हिलें, चिर दाह उठे ॥
जो कहीं हिली कवि की वाणी,
तो धरा धसे, अवतार हिलें।
जो कहीं लेखनी भभक उठी,
तो हत्यारे अधिकार हिलें ॥

क़ैदियों! सड़ो, मैं तोड़ चुका, वैभव की सड़ी हुई कारा।
धर दिया चिता में जीवित को, भर दिया दृगों में जल खारा ॥

रक्तपान

ताँगे वाले ने ताँगे में—
जोता, मारा फिर हाँक दिया।
चल चल, हट हट, तिक तिक में ही,
घोड़े का जीवन आँक लिया॥

खींची लगाम, वह दौड़ चला,
चमड़ी पर चाबुक चला हाय !
उड़ गई खाल, छलका शोणित,
जीवन जुत जुत कर जला हाय !

यह अत्याचार और उस पर,
हम नौ लाशें लद गईं हाय !
लोहू की प्यासी हत्यायें,
गूँगे पशु पर चढ़ गईं हाय !

ताँबे के कुछ टुकड़े पाकर,
नर-पशु की दानवता जागी।
पर उस घोड़े की टापों में,
पशुता खो, मानवता जागी ॥

टप टप टप टपकीं स्वेद बिन्दु,
टप टप टापों का रुदन हुआ।
टप टप टपके कवि के आँसू,
कागज़ का टुकड़ा कफ़न हुआ ॥

वह कोड़े खा खा चलता था,
हम उस पर हँसते चलते थे।
सब कवि होकर भी घोड़े के—
जीवन को डसते चलते थे ॥

वह जीवित लाशें लाद चला,
घोड़े की कुरबानी देखो।
लद चले हाय! कवि होकर भी,
कवियों की नादानी देखो॥

अपने मानस को चीर चीर,
कवि जग को रोज़ दिखाता है।
भोले पशुओं की छाती पर,
पर छुरियाँ रोज़ चलाता है॥

इस पर भी वह चुपका चुपका,
तिक तिक करने से चल देता।
जी लेता घास फूस खा कर,
जीवन जुत जुत कर तल देता॥

जलता भुनता चलता रहता,
कहता न कभी उर की पीड़ा।
कितना उदार, कितना महान,
उसका जुतना, जगकी क्रीड़ा॥

मानव! तू कितना नीच किन्तु,
अपने को कहता है महान।
मानव! तू कितना पापी पर,
अपने को कहता ब्रह्म ज्ञान॥

बन्दी

तू उसे जानवर कहता है,
बन गया जानवर पर तू ही।
तू उसे रुला कर हँसता है,
पशु होकर भी क्यों नर तू ही?

तू क्यों औरों को रुला रुला,
अपना रोना रोया करता?
रवि क्यों सरोज-वन देख देख,
जल जल जीवन खोया करता?

क्यों मूक जानवर की भाषा,
तू समझ न पाया कवि होकर?
क्यों अन्धकार में स्वयम् मिला,
तम खो न सका तू रवि होकर?

चाह

तुमने रोज़ निकलना सीखा, हमने ढलना ही सीखा।
तुमने हमें जलाना सीखा, हमने जलना ही सीखा॥

तुम मधुर मधुर मुसकान और—
तुम चाँद और तुम सूरज।
तुम मन्दिर, मस्जिद, राम, ख़ुदा,
हम नीर और तुम नीरज॥
तुम दुखियों के मन की कराह,
तुम आह भरे दो आँसू।
तुम कवि के मानस की पुकार,
तुम चाह भरे दो आँसू॥

तुमने सीखा मार्ग रोकना, हमने चलना ही सीखा।
तुमने रोज़ निकलना सीखा, हमने ढलना ही सीखा॥

बन्दी

तुम आश हास मधु प्यास शुभे !
हम फूस और तुम ज्वाला।
तुम आँखों में खारी मदिरा,
हम मद्यप, तुम मधुशाला॥
तुम क्रिया और हम लाश और–
हम चिता, और हम चिन्ता।
तुन फूलों में सुन्दर सुगन्ध,
कवि काँटे पत्थर गिनता॥

हमने हृदय लुटाना सीखा, तुमने छलना ही सीखा।
तुमने रोज़ निकलना सीखा, हमने ढलना ही सीखा॥

तुम अलकों के सिन्दूर और–
हम विधवाओं के रोदन।
हम जाड़ों की ठिठरी रजनी,
तुम जलज, और तुम जीवन॥
तुम सुन्दरता में आग और–
हम जग मरघट में जलते।
तुम एक तरङ्गित हृदय और–
हम, अपना मानस मलते॥

हमने हृदय थाम कर अपना, अन्तर मलना ही सीखा।
तुमने रोज़ निकलना सीखा, हमने ढलना ही सीखा॥

क्षत्रियत्व

नीरव निशीथ में,
भयावने जंगल में,
सिंहों की दहाड़ में,

एक वीर राजपूत राजपूतनी के साथ–
प्यार में भूला सा–
चाव में फूला सा–
लाखों अरमानों में खेलता जाता था।

प्रकृति इठलाती थी,
चाँदनी गाती थी,

साथ साथ सिंहनी सोचती जाती थी।
सोचा जो करते हैं, युवक और युवतियाँ,
शादी के चाव में, गौने के चाव में,
उसी क्षण गुफा से निकल कर यवन कुछ,
दोनों को घेर कर–
कह उठे साथ 'साथ राजपूतनी! चलो।

मस्जिद में नमाज़ पढ़—
और पढ़ कुरान अब—
बेगम बनोगी तुम,
गाय का माँस खा—
भाई की बीवी बन,
राजपूतनी से अब, ज़ीनत बनोगी तुम।'
सुनकर यह सिंहनी ने—
सिंह को देखा, फिर—
गर्ज कर भभक कर कड़क कर कह उठी—
'मुँह से निकालोगे ऐसे फिर शब्द जो,
चीरकर फाड़कर अभी खाजाऊँगी।'
राजपूत ने इधर कृपाण म्यान से निकाल—
जिसकी ज़बान से निकले थे शब्द वे—
उसकी ज़बान में तड़प कर भोंक दी।
देवी ने म्यान से नङ्गी कृपाण खींच,
दूसरे यवन की छाती में भोंक दी।
एक साथ फिर तो उन दोनों पर टूटे सब,
टूटे वे दोनों भी प्राणों का मोह तज,
साक्षात् शंकर से,
प्रलय कर खंजर से, चीर चीर फाड़ फाड़—
जितने थे सब की क़बरें बनादीं वहीं,
और फिर प्यार से चूम क्षत्राणी को—
म्यान में कृपाण डाल—
चल दिये ऐसे जैसे खेलकर बालक दो॥

जौहर

खन खनन खनन खिंच गये खड्ग,
खड़ खड़ खड़ खाण्डे खड़क उठे ।
क्षत्राणी के रुद्राणी के—
भुजदण्ड क्रोध से फड़क उठे ॥

बन्दी

सुलगी धधकी फिर भभक भभक,
उठ खड़ी हो गई ज्वाला सी।
बालक को कटि से बाँध लिया,
तलवार खींच ली ज्वाला सी॥

बोली, बहिनों! बन मृत्यु उठो,
रण प्राङ्गण लाशों से पाटो।
छाती पर चढ़ पी लो लोहू,
या अपने अपने सर काटो॥

पर हाथ न आना मुग़लों के,
सौगन्ध दिवंगत पतियों की।
सौगन्ध "पद्मिनी" सी लाखों,
उन जलने वाली सतियों की॥

सौगन्ध तुम्हें तलवारों की,
सौगन्ध जले अरमानों की।
सौगन्ध पुछे सिन्दूर और—
रजपूतों के अभिमानों की॥

जो मुग़लों के मस्तक पर था—
सौगन्ध तुम्हें उस भाले की।
सौगन्ध तुम्हें "अफ़जलखां" की—
छाती पर चढ़ने वाले की॥

जौहर

माथों की रोली पुछी, उठो,
अब लहू लगा लो माथों में।
हाथों की चूड़ीं फूट चुकीं,
उठ खड्ग उठा लो हाथों में॥

खिंच गईं कृपाणें सुनते ही,
चपला सी चम चम चम चमकीं।
खन खनन खनन खन खनन खनन,
खन खनन खनन खन खन खनकीं॥

बज गया शंख 'शंकर' जागे,
निकला त्रिशूल शिव दृग आया।
भाले चमके बरछियाँ उठीं,
केसरिया झण्डा लहराया॥

कोमल फूलों की पाँखुड़ियाँ,
क्षण में बन गईं भवानी सी।
फिर महामृत्यु सी ललनायें,
गरजीं प्रताप के पानी सी॥

कर सिंहनाद हो गईं खड़ी,
छिप गई चूड़ियों की छाया।
रग रग में बिजली सी दौड़ी,
आँखों में रक्त उबल आया॥

नङ्गी तलवारें उठा उठा—
घोड़ों पर चढ़ फुंकार उठीं।
बम महादेव, बम महादेव,
बम महादेव, हुंकार उठीं॥

दाँतों में दबा लगाम, उठा—
हाथों में ढाल कृपाण चलीं।
यवनों की चिता जलाने को—
मरघट की ज्वालायें निकलीं॥

अड़ गईं दुर्ग के द्वारों पर,
लोहे की दीवारें बन कर।
रुक गये जिन्हों के खड्गों पर,
मुग़लों के भाले तन तन कर॥

छम छम छम क्षत्राणियाँ चलीं,
खन खन खन खन तलवार चली।
आँखों से अङ्गारे निकले,
रण में प्रलयङ्कर आग जली॥

ठप ठपक ठपक घोड़े दौड़े,
रव गूंज उठा खट खट खट खट।
कट कट कर मस्तक गिरे, लहू—
पी गईं देवियाँ गट गट गट॥

जौहर

ठट पर ठट लगे हड्डियों के,
रणक्षेत्र बना पट पट मरघट।
शोणित में छप छप छप करतीं,
तलवारें दौड़ चलीं सरपट॥

बम बम बम बम बम बम कहतीं,
मौतें चढ़ गईं मस्तकों पर।
जय जय जय जय जय जय कहतीं,
मृत्युंजयि चढ़ीं तक्षकों पर॥

जब भूखी क्षत्राणी रण में,
सर काट रही थी इधर उधर।
तब कोई यवन छुरा लेकर,
पीछे से झपट पड़ा उस पर॥

बालक ने कटि में बँधे बँधे–
माँ की कटि से खंजर खींचा।
सर काट यवन का पेट फाड़,
शोणित से माँ का सर सींचा॥

फिर उस छोटे से बालक पर–
भाले ही भाले टूट पड़े।
फिर क्या था माँ के खड्गों से–
शोणित के झरने छूट पड़े॥

बन्दी

दोनों हाथों में खप्पर ले,
सोती रणचण्डी जाग चली।
सरदारों के सर काट लिये,
मुग़लों की सेना भाग चली॥

भर गया चण्डिके का खप्पर,
हो गई विजय क्षत्राणी की।
जय महा कालिका, जय जननी,
जय गूंज उठी रुद्राणी की॥

देवी ने शिशु सैनिक को दे,
कर दिया लहू से राजतिलक।
तलवार कमर में लटका दी,
जगमग जगमगा उठा शासक॥

फिर लगा चितायें सब सतियाँ,
जलती ज्वाला में चमक उठीं।
छाया प्रकाश आया सुहाग,
भभ भभ भभ लपटें भभक उठीं॥

बालक माँ! माँ! कह कर दौड़ा,
पर ढेर हड्डियों का पाया।
चित्तौड़ दुर्ग के मस्तक पर—
केसरिया झण्डा लहराया॥

जौहर

चित्तौड़ विजय, चित्तौड़ विजय,
चित्तौड़ विजय रव भर्राया।
'कर दिल्ली सर' 'कर दिल्ली सर',
प्रतिध्वनि में यह स्वर लहराया॥

अणु अणु में विधि सा अङ्कित है,
क्षत्री का अमर अनश्वर स्वर।
दिल्ली में पैर न रक्खूँगा,
जब तक न करूँगा दिल्ली सर॥

सौगन्ध हमीर हठीले की,
सौगन्ध कृपाण भवानी की।
सौगन्ध मुझे चित्तौड़ और–
इस उठती हुई जवानी की॥

जिनके न कहीं घर द्वार, शपथ–
उन 'चिमटे कलछी वालों' की।
हल्दीघाटी की शपथ मुझे,
सौगन्ध वीर मतवालों की॥

दिल्ली दरबार हुआ, लेकिन–
वह राजपूत अभिमानी था।
जो झुका न जा कर चरणों में,
वह स्वाभिमान का पानी था॥

बन्दी

ओ राजपूत ! ओ राजपूत !
ओ राजमुकुट ! फिर आगे बढ़ ।
ओ स्वतन्त्रता की विजयध्वजे !
फिर "चेतक" से घोड़े पर चढ़ ।

छटपटा रही तेरी जननी ,
फिर से तलवारें चमका दे ।
जो छिनी और जो छली गई –
वह स्वतन्त्रता फिर से लादे ॥

दोषी कौन ?

ठिठरी सी, ठठरी सी,
पंजर कङ्काल सी ,
जीवित थी हाय पर शव सी खड़ी थी वह,
भूखी भिखमंगी सी वेदना खड़ी थी वह,
आँखों में हृदय था, हृदय में आग थी,
जली सी अस्थियाँ चिता जल जाने पर–
बिखी हों जैसे ऐसे हड्डियाँ खड़ी थीं वे।
रक्त पी गई थी उस दुखिया का दुनिया यह।

चाह में कराह थी,
अन्तर में आह थी,
रोता था श्वास श्वास,

कहती थी मौन वह हो गया मेरा नाश,
कहती थी मौन वह ठोकरें खाती हूँ,
उसकी हर कम्पन से वेदना बरसती थी,
उसकी हर धड़कन से ज़िन्दगी तरसती थी,
उसकी हर हाय ! से दुःखों के खिंचते चित्र,

बन्दी

अन्तर में रुदन रोक,
आँखों में आँसू पी,
रुँधते से कण्ठ से-

बोला मैं, बोलो तुम कौन हो ? मौन क्यों ?

मौन वह रह न सकी,
किन्तु कुछ कह न सकी,

लम्बी सी श्वास भर और ले हिचकियाँ-
घुटनों में सर दे बैठ कर रोपड़ी।
भावुक से कवि की दुखिया सी आँखों में-

जल भर आया तब,

फेर मुँह चुपके से पूछे पर अपने दृग,
और फिर पूछे नयन उसके निज आँचल से,

पकड़ कर उसका सर,
पकड़ कर उसका कर,
बोला मैं सम्बल सा,

बोलो क्यों रोती हो ? बोलो क्यों रोती हो ?

पीला सा मुँह उठा,
आँखों में आँसू भर,

कवियों के गीत सी, लज्जा सी बोली वह-
एक दिन यौवन में तितली सी उड़ती थी,
एक दिन यौवन में फूल सी खिलती थी,
नाथ के हाथ से प्यार के प्याले पी,
रँगों में रँगीली सी खेलती फिरती थी

दोषी कौन ?

जानती न बिल्कुल थी दुनिया की कटुता को,
ऐसी ही हालत में हो गये रोगी नाथ ,

चल भी न सकते थे,
उठ भी न सकते थे,
पास में न पैसा था,
और थी अकेली मैं ,

बेच कर गहने सब नाथ की सेवा की –
किन्तु वे चल दिये छोड़ कर एकाकी,
प्रिय मृत्युशैया पर सोये उस निद्रा में–
जिससे न उठते फिर,
और वे मरने से आठ दिन पहिले ही–
काम से आकुल हो–
रुग्ण थे किन्तु प्रिय रति कर बैठे थे,
रति के विचारों से देव ! मैं दूर थी –
पर प्रिय प्रियतम पर मनसिज ने डाला जाल–
भूल कर बैठे वे भूल से काम की।
भूल कर बैठी मैं प्रेम के बहाने से ,
भूल कर बैठी मैं हाय गुदगुदाने से ,
भूल कर बैठी मैं बदन सहलाने से ,
भूल कर बैठे हम।
पाप वह शाप बन गया हाय ! दुखिया को,
रह गया मेरे गर्भ,
हाय जग हत्यारा पतिता बताता है।

क्यों कि—
उनके थे मित्र एक,
प्रति दिन प्रियतम को देखने आते थे,
गङ्गा की धारा सा शुद्ध था उनका हृद्,
किन्तु—
शूल से दुनिया की आँखों में चुभते थे,
कौन था मेरा अब,
चल दिये प्राणनाथ,
छोड़ कर एकाकी।
बाद अन्त्येष्टि के चली गई माँ के मैं,
उसका भी जीना पर दुनिया में दुर्भर था,
मेरे ही कारण वह सुनती थी लाखों बात,
मेरे ही कारण दृग उसके झुक जाते थे,
मेरे ही कारण मुँह उसका भी काला था,
मेरे ही कारण मुँह जग से छिपाती थी।
और यह दुनिया हम दोनों को घूर घूर—
चर्चा हमारी ही रात दिन करती थी,
माँ भी न जाने क्यों, दोषी समझती थी,
सब से न कहती थी दोष वह बेटी का,
हाय ! पर—
चूँट चूँट पुत्री को रात दिन खाती थी,
कहती थी लंकिनी ! कलंकिनी ! पापिन तू।
मर न गई, जल न गई, सामने खड़ी है क्यों ?
मौन हो सुनती मैं जननी की, दुनिया की,

दोषी कौन ?

सब की अठखेलियाँ, सबकी रँगरलियाँ बे,
आखिर फिर एक दिन उजड़े से गाँव के—
टूटे से कच्चे से घर में मैं माँ बनी,
किन्तु वह बालक भी दे दिया दुखिया ने,
बाँझ की गोदी में।
डर से इस जग के देव!

अब भी मैं बोझ हूँ, अब भी मैं बोझ हूँ,
दुनिया पर, जननी पर—
किसी से न कहती कुछ, किसी से न लेती कुछ
पाप भी न करती कुछ, फिर भी मैं पतिता हूँ
रोती हूँ रात दिन, ठोकरें खाती हूँ।
कहते ही कहते वह फूट कर रो पड़ी—
पृथ्वी पर गिर पड़ी,
होली सी धधक कर,
बोली फिर भोली वह—
मौत भी न आती क्यों?
लादो तुम विष मुझे,
करदो अहसान देव!
चरणों में पड़ती हूँ।
बोला मैं धैर्य सा,
कौन यह कहता है किया है तुमने पाप?
दुनिया का दोष है,
प्रथम तो पति से ही रति की तुमने देवि!

और यदि दुनिया यह पाप ही कहती है,
पाप वह करती है,
हत्या वह करती है;
मानवता स्वयं वह–
अग्नि में जलाती है।
क्यों कि—
मनसिज मन खींच कर क़ैद कर लेता है–
काम की कारा में।
कौन हैं 'शंकर' या 'भीष्म' को छोड़कर,
काम के त्यागी ऋषि,
'नारद' वह 'विश्वामित्र' बह गये इसमें जब–
राजा 'दुष्यन्त' से शिकार जब हो गये।
पाण्डु यह जानते थे, करूँगा मैथुन यदि–
निश्चय मर जाऊँगा।
हो गई मृत्यु पर काम से बच न सके।
'महर्षि पराशर' भी वृद्ध थे,
हो गये मुग्ध पर नौका में –
'मत्स्यगन्धा' पर,
विषय कर बैठे ऋषि, ऋषियों को अन्धा कर,
'पाण्डु' का जन्म हुआ जैसे इस पृथ्वी पर–
कौन नहीं जानता?
और, क्या नियोग है?

दोषी कौन ?

'धर्म', 'इन्द्र', 'पवन', वह 'सूर्य', से कुन्ती ने—
क्या नहीं विषय किया ?

पहिले यह धर्म था, पहिले यह कर्म था,
ऋषियों का नियम था—
जिससे जो चाहे वह रति कर सकता है।
'कल्माषपाद' की पत्नी 'मदयन्ती' ने—
'ऋषिवर वशिष्ठ' से किया सहवास जब।
'अशमक' का जन्म हुआ।

तब यही धर्म था, तब यही नियम था।
एक क्या अनेक क्या सारी ही पृथ्वी यह—
करती है वही जो किया है तुमने देवि !
आज वह पाप है, कल वह धर्म था।
आज वह धर्म है, कल वह पाप था,
धर्म और पाप का झूठा वितण्डा है,
धर्म जो हमारा है पाप वह यवनों का,
पाप जो हमारा है, धर्म वह औरों का,
और अँग्रेज़ों में होता जो रात दिन—
उनका वह धर्म है, पाप हम कहते हैं,
मार यदि देतीं उस बालक को गर्भ में—
पाप तब करतीं तुम—

पापिन थी 'कुन्ती' जिसने कर्ण को बहाया था,
पापिन यदि तुम हो तो पापिन थी 'द्रौपदी'।
और हैं पापी इस पृथ्वी पर सभी देवि !

धर्म है 'अनादि शक्ति' एक ही अनन्त है,
और सब खेल हैं मानव के नियमों के—
तथा ये नियम सब रोज़ ही बदलते हैं,
इस लिये दोषी जो कहता है तुमको देवि !
दोषी है वही बस तुम तो निर्दोष हो।
शक्ति सी भक्ति सी क्रान्ति सी जागो तुम,
फूक दो ज्वाला से संकुचित दुनिया को ,
साथ हूँ तुम्हारे मैं, साथ है हमारे वह ,
जिसके हम सब हैं देवि !

जल रहा स्नेह आज जलती समाज में ,
जल रही मानवता पश्चिम की ज्वाला में ,
शोणित में बहती है लाज वह सभ्यता,
पेट की ज्वाला है ,
पाप का प्याला है ,

किन्तु यह न्याय है किनका न पूछो यह,
आया हूँ अभी मैं पीस कर चक्कियाँ ,
आया हूँ अभी मैं कूट कर मूँज देवि !
आया हूँ बान बट, छूट कर जेल से ,
यदि यह बताऊँगा न्याय यह किनका है ,
पीसनी पड़ेंगी फिर वर्षों तक चक्कियाँ ,
साथ साथ आओ तुम शक्ति सी क्रान्ति सी,
छीन लें राज हम, छीन लें ताज हम ,
साहस है तुम में यदि,
भक्ति है तुम में यदि ,

दोषी कौन ?

एक दिन पृथ्वी से गगन पर चढ़ा दूँगा,
साथ और हाथ यदि बीच में न छोड़ा तो—
अपने ही हाथों से ताज पहिना दूँगा।
छत्र के नीचे राजरानी बना दूँगा।
सुन कर यह ठठरी में प्राण फिर आ गये,
पतझड़ के पेड़ में आई बसन्त ऋतु,
सूखी सी सरिता में प्रेमामृत बह चला,
सुषमा सन्तोष सी, सज्जित शृंगार सी,
कला सी, कमला सी, कान्ति सी, कविता सी,
गौरव-सङ्गीत सी, गंगा की गति सी शुभ,
सरिता पुलिन पर चित्र चन्दन के कानन में—
पवन की क्रीड़ा से, लहरों के नर्तन से,
सौरभ मकरन्द से सूर्य के प्रकाश से—
दृश्य वह अदृश्य की चित्रित सी सुन्दरता—
अङ्कित सी साधना, अङ्कित सी साध वह,
अन्तर में रहती है; अधरों पर गाती है,

विश्व की शान्ति है।

एक रोज़

एक रोज़ 'भैया' कहने पर,
मैंने अन्तर खोल दिया।
एक रोज़ उस मधुर बोल पर,
मैंने जीवन तोल दिया॥

एक रोज़

एक रोज़ राखी के बदले,
मैंने अपना रक्त दिया।
स्वयम् भिखारी बन कर उसको,
ताज दे दिया तख़्त दिया॥

एक रोज़ रवि ने सरोज को
चूम चूम कर प्यार किया।
एक रोज़ फिर झूम झूम कर,
अपना सब अधिकार दिया॥

एक रोज़ भूला भटका सा,
भगिनी! कह कर बोल दिया।
किन्तु उसी घटना ने मेरे–
जीवन में विष घोल दिया॥

× × ×

भरे कण्ठ से, दग्ध हृदय से,
दो सरितायें बहती थीं।
तट पर पीड़ित पर्णकुटी में,
दो कलिकायें रहती थीं॥

कला कमल सी कन्याओं का,
क्रन्दन कवि का प्यार बना।
जितना निकट हुआ उतना ही–
गहन दहन विस्तार तना॥

बन्दी

आँखों के पानी में सूरज ;
चाँद चहकते रहते थे ।
या कि डूबतों को तिनके का—
मिले सहारा कहते थे ॥

कवि-तृण टूटी सी तरणी ले ,
पैर बढ़ा कर फिसल गया ।
डूब गया वह बीच भँवर में,
सूरज नभ में निकल गया ॥

कवि का क्रन्दन बना खिलौना,
दिनकर कवि से ऊब गया ।
कवि खारी सागर में डूबा ,
रवि प्रकाश में डूब गया ॥

वृत्रघ्नी गिर रही उसी में ,
रत्नों का भण्डार भरा ।
मथ कर रत्न झूल लिये जग ने,
कवि के आगे गरल धरा ॥

और हृदय में आग, आग में—
जल, जल गल कर बहता है ।
मर्यादा की ज़ंजीरों में—
बँधा क़ैद में रहता है ॥

एक रोज़

ज़हर पिया है, सुधा दिया है,
शिव के सदृश अनश्वर है।
उनक़ा, हुमा, नागदमनी, हरि,
सोमलता कवि का स्वर है॥

पर कवि भिक्षुक भीख माँगता,
एक बार दे दो दर्शन।
और तोड़ दो विजय-ध्वजा ले,
जगतीतल के चिर बन्धन॥

तेरह तीन

जिसको मिट्टी से स्वर्ण बना, इन्द्रासन पर आसीन किया।
उसने ही पारस का जीवन, चुटकी से तेरह तीन किया॥

मैं स्वयम् त्याग, मेरा जीवन,
जलता है आह नहीं करता।
मैं वह दानी, जो देता है,
लेने की चाह नहीं करता॥
दे दिया हृदय जिसको उसने,
छाती में भाला भोंक दिया।
जिसको पूजा उसने ठुकरा,
जलती भट्टी में झोंक दिया॥

जिस जादू ने फुसला फुसला, सारा धन वैभव छीन लिया।
उसने ही पारस का जीवन, चुटकी से तेरह तीन किया॥

तेरह तीन

जिसको अमरत्व दिया मैंने,
वह ज़हरीली ठगनी निकली।
कर दिया खून सच्चाई का,
दुखियारी की महँदी निगली॥
सच ने सब पापों का बोझा,
अपने ही सर पर लाद लिया।
'जलते पर नमक छिड़कने को'
उस निर्मोही ने याद किया॥

जिसके अधरों से होड़ लगा, विष हँसते हँसते छीन लिया।
उसने ही पारस का जीवन, चुटकी से तेरह तीन किया॥

मैं राजाओं का राजा था,
पर आज भिखारी से बदतर।
मेरा मन बैठा जाता है,
निर्मम ने कोस लिया जी भर॥
जो स्वयम् पाप की प्रतिमा है,
वह साधिकार बन रही शाप।
कलुषित पर्दे से गङ्गा की,
वह चिर पावनता रही नाप॥

जिसने हिमगिरि का हृदय फोड़, छल से गङ्गाजल छीन लिया।
उसने ही पारस का जीवन, चुटकी से तेरह तीन किया॥

बन्दी

दो चार गालियों से मेरा ,
कर दिया बुला कर अभिनन्दन ।
वर्षों के बाद भूमती सी ,
आ गई हँसी सुनने क्रन्दन ।
तुमने अन्तर का रुधिर पिया,
तुमने आँसू पी लिये शुभे !
अब तो मरघट में जीते हैं ,
जीना था जब जी लिये शुभे !!

जिसने जीवन-साथी पाकर, जीने को जीवन छीन लिया ।
उसने ही पारस का जीवन, चुटकी से तेरह तीन किया ॥

जो मिला प्यार के बदले में,
प्रत्यक्ष आज फल देख लिया ।
अपनी आँखों से साथी का ,
पत्थर-अन्तस्तल देख लिया ॥
घर आए का स्वागत क्या है,
सत्कार प्यार से देख लिया ।
अपना ही सत्यानाश आज ,
इस जीत हार से देख लिया ॥

जो फिसल गई, जो बदल गई, जिसने नन्दन वन छीन लिया ।
उसने ही पारस का जीवन, चुटकी से तेरह तीन किया ॥

तेरह तीन

क्या कभी किसी ने नारी को,
अपने निश्चय पर देखा है ?
क्या आदि अन्त में कभी कहीं,
अधिकार हृदय पर देखा है ?
क्या परिवर्त्तन का इन्द्रजाल,
अणु अणु में नृत्य किया करता ?
क्या कोई हृदय फाड़ कर भी,
हृद् का अधिपत्य लिया करता ?

पर जिसने मानस चीर चीर, अधिकार हृदय का छीन लिया।
उसने ही पारस का जीवन, चुटकी से तेरह तीन किया॥

बन्धन

बन्धन की कड़ियों में बिँध बिँध, अब यह जीवन चल न सकेगा ।
किसी रोज़ हम जल जायेंगे, प्यार हमारा जल न सकेगा ॥

दुनिया हमें बाँध कर रखती,
आओ हम ये बन्धन तोड़ें ।
दुनिया हमें अलग करती है,
आओ हम यह दुनिया छोड़ें ॥
हम दोनों को जला चिता में,
दुनिया घी के दीप जलाले ।
हम दोनों की भस्मी पर फिर,
दुनिया अपने महल बनाले ॥

विश्व-वह्नि में और चिता में, चित्र हमारा जल न सकेगा ।
बन्धन की कड़ियों में बिँध बिँध, अब यह जीवन चल न सकेगा ॥

बन्धन

दुनिया वालो ! जितना चाहो,
करलो करलो नाश हमारा ।
तुम ज़िन्दों को जला रहे हो ,
भला करे भगवान तुम्हारा ॥
कुछ न कहेंगे, सब सह लेंगे ,
रोते रोते मर जायेंगे ।
वहाँ रहेंगे साथ, यहाँ फिर–
याद तुम्हें दोनों आयेंगे ॥

दोनों दीप शलभ से जलते, स्नेह हमारा जल न सकेगा ।
बन्धन की कड़ियों में बिँध बिँध, अब यह जीवन चल न सकेगा ॥

आओ हम दुनिया के आगे,
हाथ हाथ में लेकर घूमें ।
आओ हम दुनिया के आगे ,
एक दूसरे का मुँह चूमें ॥
आओ हम दुनिया के आगे ,
स्नेह-रंग से खेलें होली ।
आओ हम दुनिया के आगे ,
रोज़ प्रेम से करें ठिठोली ॥

जलने वाले जलें रात दिन, प्रेम हमारा जल न सकेगा ।
बन्धन की कड़ियों में बिँध बिँध, अब यह जीवन चल न सकेगा ॥

बन्दी

चोट चन्द्रमा के हृद् तल में,
पर जग उसे कलङ्क बताता।
देखो न्याय विश्व का कोई,
सुधाधाम पर दोष लगाता॥
इस दुनिया ने 'रामचन्द्र' से,
'सीता' को बनवास दिलाया।
इस दुनिया ने अधिकारी का,
ताज दूसरे को पहिनाया॥

लेकिन 'एडवर्ड अष्टम' का, प्रेम कभी भी जल न सकेगा।
बन्धन की कड़ियों में बिँध बिँध, अब यह जीवन चल न सकेगा॥

हम दोनों इस महाप्रलय की,
लहरों में नौका खेते हैं।
हम दोनों दुख सुख के साथी,
हम दुनिया का क्या लेते हैं॥
हमें जलाने को जग जलता,
शुभे! यही मधुमास हमारा।
हम दोनों दुनिया की चर्चा,
शुभे! यही इतिहास हमारा॥

पल पल जल जल गल गल दृग दल, ढलते, दृग-जल जल न सकेगा।
बन्धन की कड़ियों में बिँध बिँध, अब यह जीवन चल न सकेगा॥

बन्धन

उठो शुभे ! साहस कर हम तुम,
जग के बन्धन आज जलायें।
चुपके चुपके रोते रोते,
कब तक अपने नयन गलायें॥
दुनिया भूल किया करती है,
हम दुनिया की भूल भुलायें।
जग को शूल बिछाने दो, हम—
जग के पथ में फूल बिछायें॥

हम तुम जन्म जन्म के साथी, यह दृढ़ भाव बदल न सकेगा।
बन्धन की कड़ियां में बिँध बिँध, अब यह जीवन चल न सकेगा॥

कल्पना

मैं सोचा करता था रानी !

कहीं शून्य में भूल विश्व को, हम तुम प्रेम निभाते होंगे ।
कहीं किसी के दुख में सुख बन, हम तुम गीत सुनाते होंगे ॥
किसी वियोगी की समाधि पर, हम तुम फूल चढ़ाते होंगे ।
किसी पथिक के अन्धकार में, हम तुम दीप जलाते होंगे ॥
और किसी की लिखते होंगे, पृष्ठ पृष्ठ पर प्रेम-कहानी ।
मैं सोचा करता था रानी !

कल्पना

तुम्हें साथ ले 'काशमीर' की, हरियाली में रम जाऊँगा।
तुम्हें साथ ले निर्झरणी के, नीचे खड़ा खड़ा गाऊँगा॥
कहीं घास पर पास बैठ कर, देखूँगा सौन्दर्य तुम्हारा।
प्रेम-नदी में नौका होगी, होगा जग का दूर किनारा॥
किन्तु आज वे स्वप्न खो गये, शेष रहा आँखों में पानी।
मैं सोचा करता था रानी!

जब मेरा मन घबरायेगा, तुम रुन झुन करती आओगी।
सुधाधार सी, मधुधारा सी, आकर आग बुझा जाओगी॥
तूफ़ानों में, भूचालों में, तुम सम्बल सी साथ रहोगी।
संसृति की पतवार और तुम, सदा 'दाहिना हाथ' रहोगी॥
किन्तु आज मझधार बन गई, लहराता सागर तूफ़ानी।
मैं सोचा करता था रानी!

तुम मेरी, मेरा यह गौरव, छीन नहीं सकता जग सारा।
लेकिन कौन जानता था यह, रह न सकेगा साथ हमारा?
कौन जानता था तरसेंगे, किसी रोज़ हम दर्शन तक को?
कौन जानता था बरसेंगे, कभी नयन से नयन मिलन को?
आज प्रेम भी पाप बन गया, पुण्य जला, जल गई जवानी।
मैं सोचा करता था रानी!

बन्दी

देवि ! तुम्हारी आँखों में तो, निर्दोषी का मान रहेगा।
सदा तुम्हारा जो है उसका, सदा बना अभिमान रहेगा॥
गङ्गा यमुना बन जाओगी, तुम पवित्रता के प्रमाण में।
महाक्रान्ति बन बस जाओगी, तुम मेरी सच्ची कृपाण में॥
तुम इतिहासों में लिखदोगी, अपनी, जग की नयी कहानी।
मैं सोचा करता था रानी !

जब दुतकारे खाते खाते, मेरे प्राण निकल जायेंगे।
जब ये ठुकराने वाले ही, मुझे उठाने को आयेंगे॥
तब तुम उनसे यह कहदोगी, ठुकराओ अब भी ठुकराओ।
तब तुम उनसे यह कह दोगी, जाओ अब तुम वापिस जाओ॥
अन्त समय तो एक चिता में, जल जाने दो जली जवानी।
मैं सोचा करता था रानी !

कहीं तोड़ते होंगे हम तुम, पथ की दृढ़तर चट्टानों को।
कहीं फूकते होंगे हम तुम, अन्यायी के अभिमानों को॥
कहीं शहीदों की समाधि पर, हम खूनी इतिहास लिखेंगे।
कहीं किसानों की बस्ती में, हम दोनों मधुमास लिखेंगे॥
लेकिन सब संकल्प डस गई, निर्मम दुनिया की नादानी।
मैं सोचा करता था रानी !

कल्पना

सत्याग्रह के लिये कमर कस, तुम मुझसे आगे जाओगी !
महाक्रान्ति सी, शंखनाद सी, कहीं कालिका सी आओगी ॥
कहीं तिरंगे झण्डे लेकर, हम तुम आगे आगे होंगे।
मैं यह नहीं जानता था कल, बड़े भाग्य हतभागे होंगे ॥
यहाँ मौत से पहिले जग ने, सीखी कवि की राख बिछानी।
मैं सोचा करता था रानी !

दुनिया की झूठी चर्चा से, डर कर पीछे नहीं हटोगी।
वाणी की वीणा की ध्वनि में, प्रीति भरे शुभ गीत रटोगी ॥
सच्चा हृदय देख कर भी जब, जग मेरा अपराध कहेगा।
यह निर्दोषी भोला भावुक, तब फिर किस के पास रहेगा ॥
जग में लाश पड़ी सड़ती है, भूल गईं तुम चिता जलानी।
मैं सोचा करता था रानी !